गाँव-सुधार कैसे हो ?

रामचंद्र त्रिवेदी

गाँव-सुधार कैसे हो ?

लेखक
रामचंद्र त्रिवेदी
(पत्रकार)

काम, दाम, आराम कौ सुघर समनुवै होय,
सुरग-धाम ही पावहीं ग्राम-ग्राम सब कोय।
(दुलारेलाल भार्गव)

प्रकाशक
पटना-पब्लिशर्स
पटना

सजिल्द १=)] सं० १९९५ [सादी ।।=)

त्याग-तपस्या की साक्षात् मूर्ति
विद्वद्वर पं० गिरीशजी तिवारी की सेवा में

गुरुदेव,

आपकी जीवन-गंगा से शिक्षा की दो बूँदें पाकर मैं कृतार्थ हुआ हूँ। मेरी वही कृतार्थता सेवा-भाव की तरंगों में बहकर, विविध कार्यावली के रूप में व्यक्त होकर आपका कीर्ति-गान करने के लिये उद्यत हो रही है। इस पुस्तक की रचना उक्त कार्यावली में से एक है। क्या मैं अपनी इस धृष्टता के लिये आपकी अनुमति की प्रार्थना करूँ? किंतु प्रार्थना करने की बात हृदय में आते ही एक आशंका उत्पन्न होती है। हे त्यागमूर्ति! कहीं आप त्याग के नशे में, शंकर की त्याग-वृत्ति से अनुप्राणित होकर, मेरी इस क्षुद्र भेंट का भी त्याग न कर दें! नहीं, मैं आपसे स्वीकृति नहीं माँगूँगा।

क्या कोकिल ने कभी ऋतुराज से स्वीकृति माँगकर उसका गुण-गान किया है? क्या पूर्ण चंद्र के स्तवन के लिये समुद्र में सहज भाव से उत्थित ऊर्मिमाला ने कभी उसकी स्वीकृति-अस्वीकृति की अपेक्षा की है? तो फिर मैं ही क्यों आपसे स्वीकृति माँगकर अपनी कामना को आपकी त्याग-वृत्ति की अनल-ज्वाला में जलने के लिये विवश कर दूँ?

यह वस्तु आप ही की है; आप इसे लें या न लें, यह आपकी कृपा पर निर्भर है!

चरण-सेवक
रामचंद्र

दो शब्द

यदि मैंने विद्वत्समाज के लिये कोई पुस्तक लिखी होती, तो अवश्य ही वह अनधिकार चेष्टा और अक्षम्य दुस्साहस होता। पर मेरी यह तुच्छ भेंट उनके लिये है, जो गाँवों में रहते हैं, जिनकी शिक्षा-दीक्षा अधूरी और अपूर्ण है। आशा है, ऐसा समझ विद्वान् लेखक मेरी इस धृष्टता के लिये मुझे क्षमा करेंगे।

पुस्तक कैसी है, इस संबंध में अपनी तरफ़ से कुछ नहीं कहूँगा। ऐसा करना औचित्य का गला घोटना होगा। यह विषय पाठकों का है। अतः इस विषय में वे ही अपनी अमूल्य सम्मति मुझे सूचित करें।

कवि-सम्राट् श्रीपं० दुलारेलालजी भार्गव और अन्य हिंदी-अँगरेज़ी-पत्रकारों तथा लेखकों के प्रति, जिनकी रचनाओं से मैं लाभ उठा सका हूँ, यदि कृतज्ञता प्रकट न करूँ, तो गुनहगार समझा जाऊँगा। अतः मैं उन महानुभावों का आजीवन ऋणी रहूँगा।

यदि यह पुस्तिका राष्ट्र के लिये कुछ भी उपयोगी सिद्ध हुई, तो दूसरे संस्करण में ग्राम-जीवन-संबंधी और आवश्यक विषय दे पाठकों की सेवा में शीघ्र उपस्थित होऊँगा।

हरदिया, पो० भोरे
सारण
२२ जून, १९३८

सेवक—
रामचंद्र त्रिवेदी

विषय-सूची
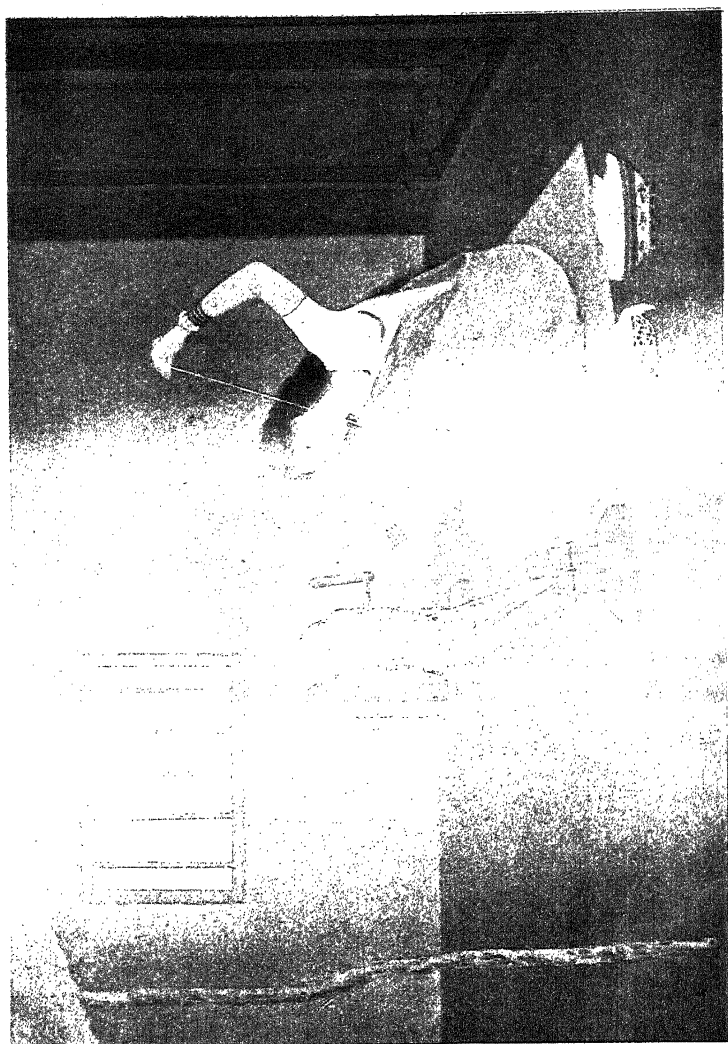
पहला परिच्छेद

पूर्व-भारत के गाँव

हम भले ही स्वीकार न करें, पर संसार के सभी न्यायी मनुष्य मानते हैं कि हिंदुस्थान के गाँव किसी समय इतने विकसित थे कि उनकी बराबरी आजकल के बहुतेरे नगर और क़सबे भी अब तक नहीं कर सके। कितना घोर परिवर्तन है ! जहाँ आज खादी के मोटे कपड़े ही तैयार करना कठिन हो गया है, वहाँ कुछ ही वर्ष पहले देखने-योग्य, बारीक मलमल तैयार होती थी। केवल उद्योग-धंधों तक ही ये ग्राम सीमित न थे, प्रत्युत शिल्प-कला, व्यापार, कृषि, विज्ञान, दर्शन, साहित्य, संगीत, युद्ध-विद्या, गणित, ज्योतिष आदि कहाँ तक गिनाऊँ, मानव-समाज को सभ्य क़रार देनेवाली सभी विद्याओं का पूर्ण विकास गाँवों की झोपड़ियों में था। गाँवों में रहनेवाले अपनी आवश्यकता की सभी वस्तुएँ स्वयं तैयार करते थे। इतना ही नहीं, हिंदुस्थान की बनी हुई कितनी ही वस्तुएँ विलायत के बाज़ारों में बिकती थीं।

रामायण-काल के वैभवशाली, जगद्गुरु भारत के गाँवों पर ग़ौर कीजिए। उस समय हम इन्हें सब तरह पूर्ण पाते हैं।

उस समय के बने रामेश्वर के समुद्र के पुल को देखकर सभी मानते हैं कि उन दिनों की जंगली जातियाँ भी प्रतिभाशालिनी एवं कलाकार थीं। विज्ञान का उन्हें इतना ज्ञान था कि वे वायुयान तक बनाकर उड़ा चुके थे। हमारी रामायण पढ़कर ही विदेशी जातियाँ यह समझ सकीं कि किसी समय वायुयान भी बनते थे। आदि महाकाव्य वाल्मीकि-रामायण देखने से पता चलता है कि उस समय साहित्य का कितना उत्थान था। राम-रावण की लड़ाई में नाना-तरह के बाणों का प्रयोग देख मानना पड़ता है कि युद्ध-विद्या में भी तत्कालीन मनुष्य बहुत बढ़े-चढ़े थे। उस समय संभवतः भारत की जातियाँ चार वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) में विभक्त हो चुकी थीं। थोड़ी-सी उपजातियों का भी वर्णन मिलता है। पर समाज में सबका उचित स्थान था, जाति-पाँति का वर्तमान पचड़ा उस समय न था। शृंगी ऋषि के साथ राम की बहन का विवाह इस बात का प्रमाण है कि उन दिनों दो वर्णों में विवाह-संबंध होते रहते थे।

उन दिनों गाँवों के अगुवा सरस्वती-सेवक, जितेंद्रिय, त्याग-मूर्ति, त्रिकालदर्शी, जगद्गुरु ब्राह्मण होते थे। उनका जीवन गाँव में रहनेवाले भोलेभाले मनुष्यों की सेवा के लिये होता था। वे देश की भलाई के लिये, सृष्टि की रक्षा के लिये अपने को खपा देना परम सौभाग्य समझते थे। वे ही क्यों? क्षत्रिय भी तो इसी में अपना गौरव

मानते थे। राजा दिलीप, शिवि, दधीचि की कथा कौन नहीं जानता। वैश्य और शूद्र भी इसी में अपनी शान समझते थे, मानो पूर्ण साम्यवाद था। पर वह साम्यवाद रूस के साम्यवाद से पवित्र, टिकाऊ और पूर्ण था। उन दिनों के ब्राह्मण आज के ब्राह्मणों की तरह नहीं होते थे। उन दिनों समाज-संगठन बड़ा सुंदर था। ब्राह्मण अपना जीवन आध्यात्मिक उन्नति में बिताते थे। वे रुपया-पैसा छूना तक पाप समझते थे। समाज की सारी आवश्यकताओं की पूर्ति वे ही करते थे। इसीलिये तो वे ऋषि, मुनि, भूदेव कहलाते थे। उनकी चरण-रज के लिये चक्रवर्ती राजा लोग भी लालायित रहते थे। उनके आश्रम गाँव के बाहर, नदी-किनारे या जंगलों में, शुद्ध मिट्टी के बने होते थे।

उन दिनों प्रारंभिक शिक्षा अनिवार्य थी। ये तपस्वी ही फल-मूल और जंगली पत्तियाँ चबाकर निःशुल्क शिक्षा देते थे। विद्यार्थियों के सारे खर्च का प्रबंध आचार्य स्वयं करते, राजा से दिलाते या उन्हें स्वावलंबी बनाकर उनके खर्च का प्रबंध उन्हीं से कराते थे। किसी भी हालत में लड़के माता-पिता से सहायता न लेते थे, चाहे वे राजकुमार हों अथवा भिखारी। उनका जीवन आजकल के विद्यार्थियों के जीवन की तरह खर्चीला या अंधकारमय न था। उनके भावी जीवन का पूर्ण भार राष्ट्र के कंधों पर था। वे स्वतंत्रता और सभ्यता के वायु-मंडल में पल-कर सदाचारी तथा सांसारिक सभी पापों से मुक्त होते थे। वे

विनयी, शिष्ट तथा अनुशासन-प्रिय होते थे। वे आचार्य तथा बड़ों की आज्ञा अविलंब पालन करते थे। प्रारंभिक शिक्षा समाप्त होने के पश्चात् लड़के जिस विषय में प्रतिभाशाली होते, वही विषय पढ़ते थे। परंतु अधिक लोग उद्योग-धंधे और शिल्प-कला ही सीखते थे। ब्राह्मण केवल विद्या पढ़ने ही में अपना सारा समय इसलिये लगाते थे कि राष्ट्र के बालकों को राष्ट्र के लिये उपयोगी बनाने का भार उन्हीं पर था। उन दिनों देश में सैनिक शिक्षा अनिवार्य थी। यदि हम बालि, सुग्रीव, हनुमान, जांबवंत, जटायु आदि को बंदर, भालू और चिड़िया ही मानें, तो मानना पड़ेगा कि मनुष्य की कौन कहे, हिंदुस्थान के पशु-पक्षी भी चतुर सैनिक थे। राष्ट्र के सभी नवयुवक अवैतनिक सैनिक होते थे। हाँ, क्षत्रिय अवश्य सेना में पूर्ण भाग लेते और निपुण योद्धा होते थे। पर इसका मतलब यह नहीं कि सैनिक शिक्षा अन्य जातियों को दी ही नहीं जाती थी। राम-रावण की लड़ाई स्पष्ट कर देती है कि उन दिनों सैनिक शिक्षा अनिवार्य थी। वे सैनिक अवैतनिक होते थे। अधिक-तर क्षत्रिय ही उन दिनों अपने देश के राजा होते थे। पर वे आज के राजों से सर्वथा भिन्न थे। वे अपनी प्रजा के दुःख से दुखी और सुख से सुखी होते थे। राज्य-कार्य कौंसिलों द्वारा संचालित होता था।

चक्रवर्ती राजा श्रीरामचंद्रजी एक साधारण प्रजा की बात पर

अपनी धर्मपत्नी तक को त्याग देने में ज़रा भी नहीं हिचकिचाए। इसका मतलब यही है कि राजा प्रजा की अवहेलना स्वप्न में भी नहीं करते थे। उस समय के उच्च राजकर्मचारी, सैनिक तथा कौंसिलर किसी प्रकार का एलाउएंस अथवा तनख़्वाह नहीं लेते थे, अतः राज्य-कार्य-संचालन तथा फ़ौज में एक पैसे का भी ख़र्च न था। यही कारण था कि राजा नाम-मात्र का टैक्स लेता था। अपने को ज़मीन का ठेकेदार समझनेवाले, प्रजा के शोषक ज़मींदार उन दिनों न थे। राजा अपव्ययी न होते थे। अपने व्यक्तिगत ख़र्च के लिये राजकोष से धन लेने का उन्हें कोई अधिकार न था। राजकोष प्रजा की थाती था, वह प्रजा के लिये अकाल में, उसकी उन्नति के कार्यों में अथवा उसके बच्चों की शिक्षा-दीक्षा में ख़र्च होता था। प्रजा को राजा से सब प्रकार की मुँह-माँगी मदद मिलती थी। ग्रामोत्थान, विज्ञान, साहित्य, कला-कौशल, उद्योग-धंधे, कृषि, शिक्षा और अन्वेषण में राजकोष से यथेष्ट सहायता दी जाती थी। दान-दक्षिणा तथा पूजा-पाठ के रुपए भी ब्राह्मण या मठाधीश शिक्षा-दीक्षा में ही ख़र्च करते थे। अन्यायी, अकर्मण्य तथा अयोग्य राजा गद्दी से उतार दिए जाते थे। कौंसिलर न्यायी, विद्वान् तथा बुद्धिमान् होते थे। राजा के हृदय में अपनी प्रजा के लिये पुत्रवत् प्रेम रहता था। इसीलिये राजा रामचंद्रजी ने वन-गमन के समय लक्ष्मणजी को "जाहि राज प्रिय प्रजा दुखारी, सो नृप अवसि नरक-

अधिकारी।" का भय दिखाकर उन्हें वन जाने से रोका था। इससे सिद्ध है कि राजा को यदि किसी पाप से डर था, तो वह प्रजा का दुःख था, उसकी सर्द आहें थीं। योगिराज जनक अपने देश में अकाल पड़ने पर, प्रजा की भलाई के लिये, स्त्री-सहित हल चलाते हैं! इसे कहते हैं प्रजा-प्रेम।

वैश्य कृषि, गोपालन तथा वाणिज्य की उन्नति करते थे। कला-कौशल, कृषि और गोपालन आदि की उन्नति के लिये, आवश्यकता होने पर, उन्हें राजकोष से सहायता मिलती थी। शूद्र-जाति की ग़ुलामी-वृत्ति का कोई उल्लेखनीय वर्णन कहीं नहीं मिलता, न अछूत का ही कोई वर्णन मिलता है। उलटे श्रीरामचंद्रजी ने गुह-नामक मल्लाह से मित्रता कर समानता का व्यवहार दर्शाया, और शवरी-नामक भीलनी के बेर खाकर समानता का व्यवहार करने का सदुपदेश दिया है। उन दिनों मनुष्य से मनुष्य घृणा नहीं करते थे। वर्ण-व्यवस्था होते हुए भी एक ही जाति थी, जिसे आप ब्राह्मण मानें अथवा शूद्र, क्योंकि ब्राह्मण से लेकर शूद्र तक सेवा करने ही में अपना गर्व समझते थे। हाँ, सेवा का प्रकार भले ही योग्यतानुसार अलग-अलग था। विद्या-वारिधि, त्याग-मूर्ति ब्राह्मण निःस्वार्थ भाव से समुचित शिक्षा देते थे। इस प्रकार अपने राष्ट्र की ही नहीं, वसुधा-मात्र की सेवा कर अपने को धन्य समझते थे। यहाँ के राजा प्रजा की भलाई के लिये अपना शरीर तक नाप देते थे। यहाँ के राज्य के उच्चाधिकारी

तथा कौंसिलर देश की अवैतनिक सेवा करते थे। यहाँ के पूँजीपति समय पड़ने पर सारा ख़ज़ाना राष्ट्र के लिये खोल देते थे। यहाँ विद्यार्थियों के लिये अन्न-वस्त्र का समुचित प्रबंध सरकार स्वयं करती थी। यहाँ के राजा ख़ज़ाने का एक भी पैसा छूना पाप समझते थे। यहाँ के लोग देश-विदेश परिभ्रमण कर, "अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्; उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्।" (अर्थात् यह मेरा है, वह दूसरे का, ऐसा मंद बुद्धिवाले कहते हैं। उदार मनुष्यों के लिये तो सारा संसार ही अपना कुटुंब है।) का पाठ पढ़ा समानता का व्यवहार करने का महोपदेश करते थे। क्या आप आज के साम्यवाद में इससे सुंदर व्यवस्था पाएँगे?

रामायण की बातें पुरानी हैं। महाभारत भी छोड़ दीजिए। चंद्रगुप्त, अशोक, हर्षवर्द्धन तथा विक्रम का ही शासन-काल लीजिए। विदेशी राजदूत अपनी डायरी में क्या लिखते हैं—

"राज्य में प्रजा सब प्रकार सुखी थी। कला-कौशल, उद्योग-धंधे उन्नति के शिखर पर थे। सभी अपने-अपने धर्म पर चलते थे। विद्वानों का आदर था। विद्यार्थियों को अन्न-वस्त्र राज्य से मिलते थे। खोजने पर भी कोई अपढ़ नहीं मिलता था। कोई झूठ नहीं बोलता था। गाँव साफ़-सुथरे थे। कोई भूलकर भी मादक द्रव्य (ताड़ी, शराब, गाँजा, भंग) नहीं पीता था। शासन कमेटियों द्वारा होता था। चोरों का भय न था, अतः घरों में कोई ताला नहीं लगाता था।"

अशोक के समय में बने स्तंभ अब भी चिल्लाकर गवाहियाँ दे रहे हैं कि उन दिनों कला-कौशल उन्नति के शिखर पर था। और, उन पर खुदे उपदेश राज्य-व्यवस्था बतलाते हैं। हम मिट गए, पर वे जड़ स्तंभ आज भी वैसे ही हैं।

चंद्रगुप्त के शासन-काल में एक विदेशी उस समय की राज्य-व्यवस्था की तारीफ़ सुनकर भारत में आ, राजा चंद्रगुप्त से मिल उसकी सुंदर शासन-व्यवस्था की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हुए अंत में राज्य के प्रधान मंत्री से मिलने की प्रार्थना करता है। वह कहता है—"जिस राजा की शासन-व्यवस्था ऐसी सुंदर है, जिस राज्य में सब-के-सब सुखी, विद्वान् और कर्तव्य-परायण हैं, उस राज्य के प्रधान मंत्री अवश्य दर्शनीय होंगे। कृपया आप मुझे उनके दर्शन कराइए।"

राजा चंद्रगुप्त अपने प्रधान मंत्री को न बुला विदेशी को साथ ले चाणक्य की कुटीर की ओर जाता है। पगडंडी के रास्ते से जाते हुए कुछ देर बाद विदेशी को चाणक्य की कुटीर नज़र आती है, जो एक साफ़-सुथरी झोपड़ी है। उसकी वह ग्राम-कुटीर विलायती मंत्रियों के शानदार बँगलों से सर्वथा भिन्न है। राजभवन से नीति-विशारद चाणक्य की झोपड़ी तक एक पतली पगडंडी चली गई है। नगर के बाहर फूस की एक झोपड़ी बनी हुई है। झोपड़ी के चारो तरफ़ फूल खिलकर अपनी मंद महक से नीतिज्ञ चाणक्य का नीति-सौरभ दिग्दिगंत में फैला रहे हैं। सुंदर,

पुष्ट गाएँ आश्रम की शोभा बढ़ा रही हैं। फूस की छत पर गोयठे सूख रहे हैं। विदेशी प्रधान मंत्री चाणक्य महाराज के त्याग, सादगी और महत्ता पर मुग्ध हो मुक्त कंठ से प्रशंसा करता हुआ कहता है—हे भारत-कुल-कमल, त्याग-मूर्ति, तपस्वी, मंत्रिराज ! जिस देश का मंत्री आप-जैसा होगा, भला वहाँ की प्रजा क्यों न सुखी, शिक्षित, ईमानदार और उद्यमी होगी ! आपका देश यथार्थ में ज्ञान-क्षेत्र है, और आप लोग वसुधा-मात्र को ज्ञान की शिक्षा देने के लिये भगवान् द्वारा भेजे गए देव हैं।

क्या संसार में किसी भी देश के मज़दूर-दल के मंत्री अथवा साम्यवाद की हेकड़ी भरनेवाले, पक्के साम्यवादी मंत्री ने त्याग का इतना महान् आदर्श, ऐसा ज्वलंत उदाहरण आज तक मानव-समाज के सामने पेश किया है ? मुझे विश्वास है, न्याय के नाम पर सभी एक स्वर से बोल उठेंगे—कभी नहीं। यह सच है, बात सोलहो आने दुरुस्त है। इतिहास के पन्ने उलट-पलटकर आप थक जायँगे, साम्यवादी पत्रों की फ़ाइलें एक-एक कर देख जायँगे, पर कहीं किसी और देश में इतना महान् आदर्श न पाएँगे। हाँ, संसार के आचार्य, वृद्ध हिंदुस्थान के गाँवों की टूटी झोपड़ियों की ओर यदि आप दृष्टि दौड़ाएँगे, तो उदाहरण-रूप में अब भी हिंदुस्थान के सच्चे प्रधान मंत्री का निवास वर्धा की वैसी ही झोपड़ी में पाएँगे। यह है हिंदुस्थान की महत्ता !

पर यह इतिहास तो हमारे स्वर्ण-युग का नहीं, बल्कि कलियुग का है। स्वर्ण-युग की अंत्येष्टि तो महाभारत-काल में ही कर दी गई। उस समय की सच्ची घटनाएँ हमें स्वप्न से भी सफ़ेद झूठ मालूम होती हैं। यही तो हमारे पतन का सबसे बड़ा प्रमाण है। यदि हमें हिंदुस्थान के गाँवों से लेकर नगरों तक की सभ्यता का सच्चा ज्ञान प्राप्त करना हो, यदि हम उनके कला-कौशल, आध्यात्मिक ज्ञान तथा पूर्ण विकास का सच्चा इतिहास जानने की इच्छा रखते हों, तो हम राजा हरिश्चंद्र के समय से लेकर राजा परीक्षित के समय तक के इतिहासों पर ग़ौर करें। उन दिनों हम हिंदुस्थान को वैभवशाली राष्ट्र पाते हैं। महल से लेकर झोपड़ियों तक में रहनेवालों को सभ्य, शिक्षित, कर्तव्यनिष्ठ तथा भारतीय संस्कृति का पृष्ठ-पोषक पाते हैं। चोर, दुराचारी, धूर्त तथा देश-द्रोही खोजने पर भी नहीं मिलते। मादक द्रव्य सेवन करनेवाले थे ही नहीं। मक्खन और रोटियाँ भरपेट मिलती थीं। यह है वैभवशाली भारतीय राष्ट्र का लाखों वर्ष का उज्ज्वल इतिहास। पर आपस की फूट के कारण वैभवशाली भारतीय राष्ट्र का भाग्य-भास्कर महाभारत-युद्ध के साथ-साथ अस्त हो जाता है, और हम एक बार सदियों के लिये अशिक्षा और दरिद्रता के घोर अंधकार में आ फँसते हैं। यही बीमारी हमारी विद्या, हमारी संस्कृति, हमारे वैभव, हमारी स्वतंत्रता पर कुठाराघात कर हमारा जीवन पशु-

वत् बनाकर छोड़ती है। हम अपने आपको भूलकर घोर पतन की ओर अग्रसर होने लगते हैं, और धीरे-धीरे बीमारी यहाँ तक बिगड़ चलती है कि हम अपना अस्तित्व क़ायम रख सकने में बिलकुल असमर्थ हो जाते हैं। इस प्रकार वैभव-शाली, जगद्गुरु भारतीय राष्ट्र का नैतिक तथा आध्यात्मिक पतन महाभारत के बाद से ही आरंभ हो जाता है। फिर भी हमारा बिगड़ा औरों के बने से लाख दर्जे अच्छा ही नज़र आता है। यदि संदेह हो, तो हमारा सच्चा इतिहास खोलकर पढ़ जाइए।

ईस्वी सन् के ३०० से ४०० वर्ष के समय को विदेशी इतिहासकार स्वर्ण-युग (Golden age) बतलाते हैं। सौभाग्य-वश उसी समय चीनी यात्री फ़ाहियान भारतवर्ष आया था। मेगास्थिनीज़ की तरह वह भी इस काल के हिंदू-राष्ट्र के पराक्रम, उन्नत अवस्था और वैभव का जो वर्णन लिख गया है, उससे मालूम होता है कि उन दिनों भी भारतीयों का जीवन पराजय और शरणागत का नहीं, बल्कि शत्रुओं के दाँतों में तिनका दबवानेवाला, पराक्रम-युक्त एवं संसार में प्रबलतम साम्राज्य स्थापित करनेवाला था। उन दिनों भारतीयों का साम्राज्य केवल भारत में ही न था, वरन् भारत से बाहर दूर-दूर के देश-विदेशों में भी उनकी भूमि-सेनाएँ और जल-सेनाएँ जाकर बड़े-बड़े राज्य स्थापित कर चुकी थीं। सीलोन से साइबेरिया तक, ब्रह्मदेश, स्याम, सुमात्रा, जावा, बोर्नियो,

फ़िलिपाइंस, हिंदू-चीन (Indo-China) प्रभृति देशों के पर्वतों पर के शिला-लेख, इनके ग्रंथालयों की पोथियों, संग्रहालयों, ताम्र-पत्रों और भू-स्तरों के प्राचीन अवशेष ही इस बात की साक्षी दे सकते हैं। इनका केवल बौद्ध-धर्म ही नहीं, वरन् राज्य भी साइबेरिया से फ़िलिपाइन तक फैला हुआ था।

प्राचीन काल में भारतीय राष्ट्र को जिन अंतिम शत्रुओं का सामना करना पड़ा, उन हूणों के विषय में इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि जो दशा शक-यूचियों की हुई, वही उन हूणों की भी हुई। इन हूणों के प्रचंड आक्रमण ने योरप के विजयी रोमन साम्राज्य की कमर ही तोड़ दी थी, और एशिया से चीन तक सारे देश को उलट-पलट डाला था। किंतु हिंदुस्थान में उनके पैर शकों के जितने भी नहीं टिक सके। हिंदुस्थान में उनका किया हुआ उत्पात जितना भयंकर था, उतनी ही शीघ्रता से उनका उच्छेद भी हुआ। सन् ५०० के लगभग उनके कप्तान तारेमाल ने पंजाब से घुसकर मालवा-प्रदेश तक आक्रमण किया। ५०२ में उसका पुत्र मिहिरकुल गद्दी पर बैठा। लगे हाथ हिंदू-राजों का प्रबल संघ एकत्र हुआ, और प्रतापी सेनापति यशोवर्द्धन ने हूणों को मारते-मारते पंजाब तक खदेड़ दिया, और कोरर के रण-क्षेत्र में उनकी सत्ता को धूल में मिलाकर ही चैन लिया। उस समय के विश्व-सम्राटों में चंद्रगुप्त, बिंबसार, अशोक आदि सर्वोपरि थे या नहीं, यह सीधे

उस ग्रीक राजदूत मेगास्थिनीज़ अथवा अशोक के कीर्ति-स्तंभों से पूछिए।

श्रीहर्ष की मृत्यु (सन ६४६) के बाद से हमारी सभ्यता की, हमारे वैभव की दीवार गिरती हुई नज़र आती है। अभागे हिंदुओं का अंतिम विलासी राजा पृथ्वीराज, देश-द्रोही जयचंद की सहायता से, अंतिम बार, ८६३ में, थानेश्वर के मैदान में, हिंदुओं की लाखों वर्ष की कीर्ति को, उनके असंख्य वर्षों के जगाए हुए वैभव को, नहीं-नहीं उनके प्राणों से भी प्यारी स्वतंत्रता और सभ्यता को लुटा देता है। आखिर करता ही क्या, विलासी भी कभी देश और कुल की प्रतिष्ठा क़ायम रख सकने में समर्थ हो सकते हैं !

इसके बाद मुग़ल आते हैं, और विदेशी होते हुए भी वे कुछ के सिवा हमारे साथ ऐसे मिल जाते हैं, जैसे भाई भाई के साथ अथवा हम आर्य अनार्यों के साथ या शक, यूची और हूण पराजित होकर हमारे साथ। धार्मिक बातों के सिवा मुसलमान-शासकों और हिंदुओं में किसी तरह का फ़र्क़ नहीं रहा। मुसलमान-शासक भारत में आकर बस गए, और उसे ही अपनी प्यारी मातृभूमि समझकर उसी की उन्नति के लिये सदैव प्रयत्नशील रहे। यही कारण था कि हिंदुस्थान उन दिनों भी वैभवशाली राष्ट्र बना रहा। कला-कौशल, ग्राम-उद्योग और व्यापार की वृद्धि होती ही रही। यही कारण है कि भारत की प्रत्येक झोपड़ी को हम १८वीं सदी के अंत

तक धन-धान्य से परिपूर्ण पाते हैं। लुटेरों द्वारा कई बार लूटे जाने पर भी कुबेर के कोष के समान इसे भरा हुआ पाते हैं। अकाल पड़ने पर भी दो मन का गेहूँ, १६ सेर की मिस्री और ८ सेर का घी बिकता था। मुग़ल-साम्राज्य के अंतिम दीपक बहादुरशाह के समय तक, हमारे बूढ़े दादा बताते हैं, किसान सुखी और ऋण-रहित थे।

अँगरेज़ी-राज्य के प्रारंभ से ही हमारे देश तथा हमारे गाँवों की झोपड़ियों में दरिद्रता-देवी घुसना आरंभ करती है। अँगरेज़ी-कंपनियों द्वारा गाँवों के उद्योग-धंधे नष्ट कर हमें पंगु बना देना, शिक्षा-पद्धति का दृष्टि-कोण बदल देना, मादक द्रव्यों का प्रचार करा हमारी देव-बुद्धि को पाशविक बुद्धि में परिणत करा देना, ये तीन हमारी बरबादी के विशेष कारण हैं। कलकत्ता, बंबई आदि शहर भी तो पहले गाँव ही थे। गाँवों के कोने-कोने में ग्रामीण कला-कौशल का बोलबाला था। हाय ! किस तरह अमानुषिक अत्याचार कर, उन भोलेभाले, देहाती भाइयों के कला-कौशल, उद्योग-धंधे नष्ट-भ्रष्ट कर अपने हाथ में ले लिए, इसे याद कर भारतीय रो उठते हैं। मैं तो जब कभी भारतीय ईसाइयों से मिलता हूँ, तो यही प्रश्न करता हूँ—"क्या तुमने अँगरेज़ों से पूछा है कि इस प्रकार जो भारत को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष लूटकर मरुभूमि बनाए जा रहे हो, इसका क्या अर्थ है ? हम तो तुम्हारे ही धर्म में हैं, भारत की इस

दरिद्रावस्था में कैसे पेट भरेंगे, क्या तुमने कभी सोचा है ?" क्या अँगरेज़ हमारे ईसाई भाइयों को इसका जवाब दे सकेंगे ? मुझे विश्वास है, कभी नहीं। वे तो भारतीय ईसाइयों को कुटिल मित्र के समान गढ़े में डुबोकर उनकी मूर्खता पर हँस रहे हैं। अतः हे हिंदू-मुसलमान और ईसाई भाइयो ! आओ, हम तीनो एक साथ मिलकर अपनी दशा सुधारें, भारत में रहनेवाले सभी भारतीय हैं, और उनका जीवन-मरण भारत से ही ताल्लुक़ रखता है, न कि अरब और योरप से।

हम पुनः अपने विषय की तरफ़ बढ़ें। यह तो साफ़ ही है कि हमारे गाँवों की आर्थिक स्थिति के भयंकर ह्रास का कारण एकमात्र गाँव के उद्योग-धंधों को जड़ से उखाड़ फेकना ही है। अँगरेज़ व्यापारियों ने देखा कि यदि हम स्वावलंबन छोड़े देते हैं, तो हमारे बाल-बच्चे भूखों मर जायँगे, और हाथ कुछ न आएगा। अतः ज़ुल्म और अमानुषिक अत्याचार के बल से हमारे कला-कौशल को नष्ट कर हमें परावलंबी बना दिया। हम जरूरी वस्तुओं के लिये भी मुहताज हो गए। इस प्रकार ज़ुल्म के ज़ोर से अपने द्वारा बनाई जानेवाली चीज़ें स्वयं न बना हम परावलंबी होने लगे। अब क्या था, दरिद्रता ने हमारे घरों में अपना अड्डा जमा लिया, और एक बार हम ग़रीबी की दलदल में बेतरह जा फँसे। कुल ८० बर्ष के भीतर ही हम बेतरह बरबाद हो गए।

आज का गाँवों से लेकर नगरों तक का दृश्य देखकर शत्रु

भी आँसू बहाए विना नहीं रह सकते। आज दरिद्रता भारत के कोने-कोने में नग्न रूप धारण कर नाच रही है। जिसे देखिए, ग़रीबी की विषम ज्वाला हृदय में दबाए किसी प्रकार अपनी प्रतिष्ठा बचा रहा है। यदि आपको ग़रीबी का सच्चा रूप देखना है, तो कन्याकुमारी से नेपाल की तराई तक का कोई गाँव ले लें। ८० वर्ष के भीतर उन गाँवों की शक्ति का जो ह्रास हुआ है, उस पर ग़ौर कर आप तड़प उठेंगे। नब्बे प्रतिशत मनुष्यों के पास तन ढाकने के लिये वस्त्र नहीं! लाखों भूखे कमर में एक फटा चिथड़ा-मात्र लज्जा-निवारण-हेतु लपेटे हुए हैं, साथ में भूख से पीड़ित बच्चों को लेकर दरवाज़े-दरवाज़े, एक मुट्ठी अन्न के लिये, तिरस्कृत हो रहे हैं। लाखों स्त्री-पुरुष अपना धर्म छोड़ विधर्मी हो रहे हैं। सैकड़ों पढ़े-लिखे, सभ्य नवयुवक मृत्यु-देवी की शरण लेकर, उसकी सहायता से, जिन्होंने उनके सोने के घर को राख बना डाला है, उनके विरुद्ध न्याय के लिये भगवान् के न्यायालय में पहुँच रहे हैं। ये निराश नवयुवक बेचारे पढ़ाइयाँ पढ़कर और करेंगे ही क्या ? क्या वे कोट-पैंट पहनकर, बी० ए०, एम्० ए० की डिग्री लेकर दर-दर भीख माँगते फिरें ? उन्हें तो अपने पथ का असली काँटा समझ, जान-बूझकर विदेशी नीतिज्ञों ने बेकार बना डाला है। बीजगणित के फ़ॉरमूले, गणित के कठिन प्रश्न, तवारीख़ों के सन्-संवत, भाषा की मिठास क्या रोटी का प्रश्न हल कर सकती है ? यदि नहीं, तो जिन्होंने उन्हें दिन-दोपहर,

सरे-बाज़ार ठगा है, उनके ख़िलाफ़ फ़रियाद के लिये क्या भगवान् का दरवाज़ा वे न खटखटावें।

क्या हमारे ही देश में रहकर ज़ालिमों के कुत्ते मांस, रोटी और मक्खन नहीं उड़ा रहे हैं? क्या हमारे शिक्षित लाड़ले उनके कुत्तों से भी गए-गुज़रे हैं? ऐ मेरे राष्ट के नवयुवको, अब आप समझ गए होंगे कि क्यों आपका देश दरिद्र हो गया है। जो नवयुवक आवेश में आकर आत्महत्या कर लेते हैं, वे बड़ी ग़लती करते हैं। हमारे गाँवों की दरिद्रता के कारण (१) ग़ुलामी, (२) भारतीय कला-कौशल और उद्योग-धंधों का नाश, (३) वर्तमान शिक्षा-पद्धति, (४) मादक द्रव्य-सेवन, (५) अशिक्षा और (६) आपस की फूट हैं। अतः इन छओ के विरुद्ध आंदोलन आरंभ कर दें। आपकी ग़रीबी आप ही दूर हो जायगी। पर इसके लिये आवश्यकता है समाज में क्रांति लाने की। इसे आप भूल जायँ कि आपके गाँवों का सुधार कुछ टोपधारी बाबू लोग कर देंगे, और आपकी ग़रीबी का अंत सप्रू साहब की स्कीम से हो जायगी। हाँ, तो आपको इन बातों की ओर लगन के साथ लग जाना चाहिए—

१—"पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।" इस वाक्य को याद कर पूर्ण स्वराज्य की चेष्टा करें। आपकी झोपड़ियों में फिर वैभव टूट पड़ेगा, और आपका नाम इतिहास के पन्नों में अमर हो जायगा। आपको वही स्थान मिलेगा, जो आयर्लैंड,

रूस, जर्मनी और फ्रांस के नौजवानों को अपना देश आज़ाद करने में मिल चुका है।

२—आप सभी भारतीय प्रण कर लें कि आज से एक भी वस्तु विदेशी * नहीं ख़रीदेंगे, और साथ ही ग्राम-उद्योग-धंधों को पुनर्जीवित करना आरंभ कर देंगे।

३—वर्तमान शिक्षा-पद्धति में आमूल परिवर्तन करें।

४—मादक द्रव्यों का सेवन एकदम रोक दें।

५—गाँव-गाँव में पाठशालाएँ स्थापित कर भारतवासी-मात्र को शिक्षित कर दें। उद्योगशालाएँ खोल उद्योग-धंधों की पढ़ाई प्रारंभ करा दें।

६—हिंदू, मुसलमान, ईसाई, सभी अपने को भारत-माता की संतान समझ मिल-जुलकर रहें। ऐसा करने से आपके गाँव पुनः स्वर्ग हो जायँगे।

---

* जितने रुपयों की आप विलायती चीज़ें ख़रीदेंगे, उतने रुपए आपके देश से निकलकर विलायत चले जायँगे, अतः विदेशी चीज़ें ख़रीदना ज़बरदस्ती विदेश रुपए भेजना है। एक अँगरेज़ की घड़ी टूटती है, तो वह अठगुना खर्च कर, विलायती दूकानों पर भेजकर अपने राष्ट्र की सहायता करता है। पर हम अभागे थोड़े में विलायती माल ख़रीदकर अपने राष्ट्र को दिनोंदिन दरिद्र बना रहे हैं।

दूसरा परिच्छेद

शिक्षा

यह बताने की आवश्यकता नहीं कि वर्तमान शिक्षा-पद्धति हमें पंगु बना चुकी है, अतः उसका श्राद्ध कर आगे बढ़ना होगा। 'पुराना ही चावल पथ्य होता है' को चरितार्थ करते हुए हमें अपनी ही शिक्षा-पद्धति अपनानी होगी, तभी हमारा कल्याण होगा।

शिक्षा घर से आरंभ होनी चाहिए। कच्चे मिट्टी के बर्तन पर जैसा चिह्न लगाकर पका देंगे, आजीवन वह चिह्न बना रहेगा, ठीक उसी प्रकार बच्चों के मस्तिष्क-रूपी घड़े में शिक्षा-रूपी जैसा चिह्न लगा देंगे, वह आजीवन बना रहेगा। अतः बच्चों की प्रारंभिक शिक्षा में बड़ी सावधानी की आवश्यकता है।

बच्चे जब एक वर्ष के हो जायँ, तो उन्हें ऐसे आदमी के साथ न रखना चाहिए, जो उन्हें गाली देना सिखावे, दूसरों की चीजें लेना सिखावे, या भूत-प्रेत, बाघ-सिंह या किन्हीं और डरावनी चीजों का नाम लेकर डरावे। इससे लड़के गाली देना सीख जाते हैं, चोरी करने लगते हैं, और डरपोक बन जाते हैं। कितने ही घरों में माता-पिता या भाई-बहन बालक को दूसरों को गाली देना सिखाते हैं, और जब

वह गाली बकता है, तो निहायत ख़ुश होते हैं। सूखी हड्डी चबाने से जब कुत्त के मुख से ख़ून निकलने लगता है, तो वह ख़ुशी के मारे कूदने लगता है, मानो हड्डी से ही ख़ून आ रहा है। यही हालत उन नासमझ माता-पिताओं की है, जो अपने बच्चों को दूसरों को गाली देते देखकर ख़ुश होते हैं। बच्चों को सर्वदा पुरानी रीति के अनुसार शिवि, दधीचि, दिलीप, हरिश्चंद्र, राम, कृष्ण, भीष्म, कर्ण, अर्जुन, भीम, द्रोणाचार्य, अभिमन्यु, अंगद, बालि, हनुमान्, लक्ष्मण, हज़रत महम्मद साहब, तैयबजी, शिवाजी, बाल गंगाधर तिलक, गोखले, दादाभाई नौरोज़ी, महात्मा गांधी, महामना मालवीय, पं० जवाहरलाल नेहरू, देश-रत्न राजेंद्र बाबू, सीमांत-गांधी अब्दुल ग़फ़्फ़ारख़ाँ, आज़ाद और डॉक्टर महमूद आदि वीर पुरुषों तथा आज़ादी के दीवानों की जीवनियाँ सुनाते रहना चाहिए। बड़ों को नमस्कार करना सिखाना चाहिए। यदि लड़के किसी को भूलकर भी गाली दे दें, तो उन्हें ऐसे शब्दों में समझाना चाहिए, जिससे वे अपनी ग़लती समझ जायँ, और पुनः ऐसा न करने की पक्की प्रतिज्ञा कर लें।

जब लड़का ५ वर्ष का हो जाय, तो ज़बानी पढ़ाना सिखाया जाय। उस समय माता की शिक्षा सबसे अधिक लाभदायक होती है। पर यह तभी संभव है, जब भारत की समस्त माताएँ पढ़ाई जायँ। माता के अभाव में बहन, बुआ, चाची, पिता, चाचा तथा भाई शिक्षा दें। एक वर्ष के भीतर, यानी ६ वर्ष की उम्र में,

बच्चे को वर्णमाला, गिनती और पहाड़े का मौखिक ज्ञान हो जाना चाहिए। ऐसे लड़कों को दो घंटे सुबह और दो घंटे शाम, पढ़ाना चाहिए, इससे अधिक नहीं। जब वर्णमाला का पूर्ण ज्ञान हो जाय, तो वीर पुरुषों की जीवनियाँ आरंभ करा देनी चाहिए। जीवनियाँ रोचक देहाती भाषा में हों। इसके बाद योग्य ग्राम-शिक्षक की देख-रेख में पाठशाला भेजना चाहिए। इन दिनों बच्चों को केवल शिक्षक के भरोसे छोड़ देना बेवक़ूफ़ी है। उनकी देख-रेख स्वयं करनी चाहिए। उनके ऊपर हमेशा एक योग्य गुप्तचर रख छोड़ना चाहिए, जो उनके चाल-चलन, रहन-सहन की देख-भाल करे। पर वह गुप्तचर ऐसा न हो, जो लड़के को झूठी बातों में फँसा दे, या स्वयं दुराचारी हो। पाठशाला में देखना चाहिए कि लड़का किसी को गाली तो नहीं देता, किसी की वस्तु तो नहीं चुराता, शिक्षक की आज्ञा पालन करता है या नहीं, अन्य किसी दुष्कर्म में तो नहीं फँसा है ?

जब लड़का आठ-नौ वर्ष का हो जाय, तो पढ़ते हुए भी अपने कुल-समाज और परिस्थिति के अनुसार काम लेना चाहिए। यदि घर पर खेती होती हो, तो बिना संकोच उससे खेती का काम लेना चाहिए। खेती के काम में लड़का गोबर निकाल सकता है, उसे बाहर गढ़े में रख सकता है। दरवाज़ा बहार सकता है। फुलवारी की देख-भालकर सकता है। गाय-भैंस दुह सकता है। मवेशी खिला सकता है। चर्खा चलाना रस्सी बटना आदि आसान काम भी लेने चाहिए। यदि स्कूल में खेती

करने की पुस्तकें न पढ़ाई जाती हों, तो उन्हें घर पर अवश्य पढ़ाना चाहिए। यदि पढ़ाई जाती हों, तो उनमें दिए तरीक़ों को कार्य-रूप देने के लिये घर-घर शिक्षकों अथवा घरवालों को तैयार रहना चाहिए। बच्चों को खेती के तरीक़े पुस्तकों से बताते हुए यह बताना चाहिए कि उत्तम बीज की क्या पहचान है, उत्तम खाद कैसे तैयार होती है, कंपोस्ट कैसे बनाया जाता है, कच्ची खाद से क्या हानि होती है, गहरी जुताई से क्या फ़ायदा है, कौन खाद किस फ़सल के लिये फ़ायदेमंद है *, बाग़बानी करने, तरकारियाँ बोने, उचित खाद देने, फ़सल के कीड़ों की पहचान और दवा करने की शिक्षा मिडिल के साथ-साथ पूर्ण हो जानी चाहिए। उद्योग-धंधों का काम सिखाकर बच्चों को स्वावलंबी बनाना चाहिए। ऐसा करना चाहिए, जिससे बच्चे उद्योग-धंधों (साबुन बनाना, स्याही बनाना, बिस्कुट बनाना, काग़ज़ बनाना, मिठाई बनाना, शर्बत बनाना आदि) से पढ़ते समय कुछ कमाकर ग़रीब परिवार को दे सकें। तभी मज़दूर अपने बच्चों को शिक्षा दे सकेंगे।

---

* यदि संभव हो, तो स्कूलों में ही खेत रखकर ये सब बातें सिखाई जायँ। प्रत्येक थाने में सरकार द्वारा उद्योग-धंधों का एक स्कूल खोल कपड़े बुनने तथा स्याही, साबुन, काग़ज़ और खिलाने बनाने की तथा अन्य ग्राम्य उद्योग-धंधों की शिक्षा दी जाय, जिससे लड़के अपनी जीविका चला सकें।

केवल पुस्तकों के पन्ने रटने से कुछ फ़ायदा न होगा, उलटे ग़रीबी बढ़ती जायगी। अतः पुस्तक-ज्ञान होते ही कृषि तथा उद्योग-धंधों पर ध्यान देकर जीविकोपार्जन की शिक्षा देनी चाहिए। इसी से देश की भलाई होगी। प्रतिशत ८० लड़कों को मैट्रिक और आई० ए०, बी० ए० पास न करा उद्योग-धंधे ही सिखाने चाहिए।

लड़कों के चाल-चलन पर ख़ूब ध्यान देना चाहिए। थोड़ी-सी असावधानी से यदि लड़का बिगड़ गया, तो फिर कुछ न कर सकेगा। मेरी समझ में यदि लड़के का जीवन बरबाद होता है, तो अधिकतर माता-पिता की असावधानी से। बहुतेरे माता-पिता अपने बच्चों को संसार के उपयुक्त बनाना नहीं जानते। उनकी ही भूल से जब बच्चे ख़राब हो जाते हैं, तो वे उन्हें पीटते हैं, या उन्हें घर से अलग कर देते हैं, जिसका असर उन पर बहुत बुरा पड़ता है।

एक विद्वान् ने बताया है—

"Wealth is lost, nothing is lost,
Health is lost, something is lost,
Character is lost, everything is lost."

अर्थात् जिसका धन नष्ट हो गया हो, उसका कुछ भी नहीं बिगड़ा, जिसका स्वास्थ्य नष्ट हो गया हो, उसका थोड़ा-सा नुक़सान हुआ, परंतु जिसका चाल-चलन नष्ट-भ्रष्ट हो गया हो, उसका सब कुछ नष्ट हो गया।

जीवन-समर में विजय पाने के लिये स्वास्थ्य तथा चाल-चलन बड़े ही महत्त्व-पूर्ण विषय हैं।

ख़राब सोहबत का असर बहुत बुरा होता है। अक्सर बच्चे बुरी संगत से ही बिगड़ते हैं। अतः देखते रहना चाहिए कि वे खराब सोहबत में न फँसें। उन्हें कोई बुरी आदत न लगे। कोई बुरी वस्तु के सेवन की आदत न डाल लें। अबोध बच्चे भला-बुरा नहीं समझ सकते। माता-पिता को उनकी ग़लतियाँ मालूम होते ही उन्हें अकेले में, प्रेम-पूर्वक समझाना चाहिए। एक बार, दो बार न मानेगा, अंत में अवश्य सुधर जायगा। जब उसे अपनी ग़लती मालूम हो जायगी, तो वह ऐसा सुधरेगा कि जीवन में कोई ग़लती ही न करेगा।

बारह वर्ष की उम्र तक मिडिल-इँगलिश की परीक्षा समाप्त हो जानी चाहिए। जब लड़का मिडिल-परीक्षा की शिक्षा प्राप्त करने लगे, उस समय उसे उद्योग-धंधे और कृषि-शास्त्र के साथ-साथ बाहरी पुस्तकें भी पढ़ानी चाहिए। बाहरी पुस्तकों में चुनी हुई जीवनियाँ तथा समाचार-पत्र पढ़ाना उत्तम होगा। किंतु यह तभी संभव है, जब प्रत्येक गाँव में पुस्तकालय खुल जायँ।

जब लड़के मिडिल स्टैंडर्ड की पढ़ाई समाप्त कर डालें, उस समय ख़ूब सोच-समझकर, अपनी परिस्थिति का ख़याल रख-कर आगे पढ़ाना चाहिए। यदि रुपए-पैसे कमाने का इरादा हो, तो दूकानदारी सिखानी चाहिए या ग्राम्य उद्योग-धंधों की

शिक्षा देनी चाहिए। यदि लड़का धनी घर का, पढ़ने में तेज़ हो, तो उसे उच्च शिक्षा देनी चाहिए। पर आगे पढ़ाते समय ध्यान रखिए, घर का अधिक ख़र्च न हो। उन्हें सादगी की शिक्षा देनी चाहिए।

अँगरेज़ी पढ़नेवाले लड़के का भी ख़र्च जितना संभव हो, कम होना चाहिए। अच्छा होगा, यदि लड़का मैट्रिक पास करने के बाद स्वावलंबी बनकर पढ़े। हमारे बच्चे स्वावलंबी बनने में शर्माते हैं। उन्हें अमेरिका और जापान के बच्चों से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। अपने गार्जियन से रुपया लेकर पढ़ने से अच्छा है कि लड़का दूसरों के जूते तक साफ़ करके अपना ख़र्च चलावे। यों तो शिक्षा-पद्धति में परिवर्तन अब होगा ही, लड़के स्वावलंबी भी बनाए जायँगे, पर मंत्रिमंडल की योजना सफल तभी होगी, जब हम अपना पूर्ण सहयोग देंगे।

इन दिनों अँगरेज़ी पढ़नेवाले बच्चों का जीवन कितना विषाक्त, कितना ख़र्चीला तथा कितना आडंबर-पूर्ण हो गया है, इसकी कल्पना-मात्र से हम घबरा उठते हैं। हाईस्कूल में नाम लिखाया नहीं कि उनका जीवन रहस्यमय हो गया। मन-वचन-कर्म, तीनो में अपना आमूल परिवर्तन कर डालते हैं। ख़र्च बढ़ने लगता है। एक कुर्ते की जगह दो गंजियाँ, चार क़मीज़ें, दो कोट, दो कुर्ते; दो धोतियों के स्थान पर चार धोतियाँ, दो हाफ़पैंट; एक मामूली जूते की जगह एक फ़ुल शू, एक चप्पल, दो जोड़े मोज़े, एक जोड़ा पातावा की ज़रू-

रत आ पड़ती है। यदि वे हाईस्कूल-परीक्षा पास कर गए, तो कहना ही क्या—समर-सूट, विंटर-सूट, स्लीपिंग सूट आदि जहाँ तक हो सकता है, सूटों में रुपए ख़र्च कर डालते हैं। यदि एक किसान, जिसकी आमदनी ४०० रुपया प्रतिवर्ष हो, एक लड़के को कॉलेज पढ़ने के लिये भेज दे, तो समझ जाइए, उसने ग़रीबी ख़रीद ली! कपड़ों के बाद साबुन, टूथ-पाउडर, स्नो, घड़ी, फ़ाउंटेन पेन और उसकी स्याही, लेटर-पेपर, इनवेलप, मित्रों के पास पत्र-व्यवहार का ख़र्च, मित्रों के खिलाने का ख़र्च, सुगंधित तैल, शीशे, कंघे, ब्रश, पान-सिगरेट आदि के ख़र्च से अपना बसा घर फूँककर ही चैन लेते हैं। यह सब देख हमें मानना पड़ता है कि लॉर्ड मेकाले ने हिंदुस्थान में अँगरेज़ी-शिक्षा की नींव डालकर हमें बरबाद कर देने का सर्वोत्तम मार्ग ढूँढ़ निकाला था। शाम को यदि आप शहर के किसी सिनेमाघर की ओर नज़र दौड़ाएँ, तो आपको अन्य दिन ४० प्रतिशत तथा शनिवार और रविवार को ६० प्रतिशत कॉलेज और स्कूल के विद्यार्थी ही नज़र आएँगे। अपने मित्रों के साथ सिगरेट् पी रहे हैं, सोडे की बोतलें उड़ा रहे हैं, पान चबा रहे हैं, और क्या-क्या कर रहे हैं, कहाँ तक लिखूँ। रुपयों का इस तरह दुरुपयोग देख कलेजा मुँह को आने लगता है! माता-पिता सोचते हैं, चलो, लड़का बी० ए० होकर डिप्टी बन गया, तो सारे ख़र्च सवाब हो जायँगे। वे भविष्य की आशा में आधा पेट खाना खा, मैली धोतियाँ पहन, अपने

सारे ख़र्च में किफ़ायतशारी कर कॉलेज का टैक्स भरा करते हैं। इस पर भी नहीं चलता, तो क़र्ज़ लेते हैं, गहने गिरवी रखते हैं, अथवा खेत बेचते हैं। लड़के भी जब तक पढ़ते, डिप्टीगिरी* से नीचे का स्वप्न ही नहीं देखते। पर बी० ए०, एम्० ए० पास करके दो-चार वर्ष इधर-उधर घूमने के बाद आँखें खुलती हैं, सारा अभिमान चूर हो जाता है। आख़िर बेचारे क्या करें, वर्तमान शिक्षा-पद्धति ने उनका सर्वनाश कर डाला है। पटना-विश्वविद्यालय के पदवीदान-समारोह के अध्यक्ष-मंच पर से, श्रीसर तेजबहादुर सप्रू ने वर्तमान शिक्षा-पद्धति की बुराइयाँ दिखाते हुए स्पष्ट कहा था—

---

* यह भावना अब बदल रही है। लोग धीरे-धीरे अपने लड़कों को डिप्टी-कलेक्टर बनाने के लिये अब उतने लालायित नहीं दीखते। कांग्रेस-मिनिस्टरी के ज़माने में तो अब यह भावना और दब रही है, लोग स्वतंत्र व्यवसायों को ही तरजीह दे रहे हैं। हमारे एक मित्र हैं। वह तीव्र-बुद्धि विद्यार्थी रहे हैं, पर आई० सी० एस्० आदि परीक्षाओं में सफल न हो सकने के कारण अब किसी छोटी नौकरी की ही तलाश में हैं। उनके पिता कलेक्टर हैं, शायद इसीलिये वह अपना स्वतंत्र व्यवसाय करना पसंद नहीं करते। यदि ऐसे तीव्र-बुद्धि विद्यार्थी स्वतंत्र व्यवसायों में लगें और नौकर या ग़ुलाम बनने की अपनी अभिरुचि त्याग दें, तो देश का कहीं तीव्र गति से उद्धार हो जाय। अब तक तीव्र-बुद्धि भारतवासी अँगरेज़ी सरकार की नौकरी करने में ही अपना गौरव समझते थे, पर हर्ष की बात है, अब भावना बदल रही है।—संपादक

"If education means begging, it must be condemned and criticised."

हमारे सैकड़ों डिग्रीधारी, होनहार युवक बेकार जीवन से ऊब शहरों में दूध बेच रहे हैं, पनहेरी का काम कर रहे हैं, सिपाही बन रहे हैं, डाकिए का काम कर रहे हैं, अथवा जूतों पर पॉलिश कर रहे हैं। आख़िर करें तो क्या करें, खेती कर ही नहीं सकते, रुपए हैं नहीं कि व्यापार करें, उद्योग-धंधों की शिक्षा उन्हें मिली ही नहीं। अगर व्यावसायिक शिक्षा मिली होती, तो उन्हें आज ये दिन न देखने पड़ते।

अतः हमें कमर कसकर इस शिक्षा-पद्धति का नाश कर हिंदुस्थान की शिक्षा-पद्धति अपनानी होगी, तभी हमारा सुधार होगा।

यह तो हुई बच्चों की शिक्षा की योजना, पर हमें गाँवों की निरक्षरता भी दूर करनी है, बच्चे से लेकर बूढ़े तक को—स्त्री-पुरुष-मात्र को—शिक्षित बनाना है। जब तक हम इस समस्या को हल नहीं कर पाते, तब तक हमारे राष्ट्र का उद्धार होना कठिन ही नहीं, वरन् असंभव है। साक्षरता ने ही रूस का काया-पलट किया, इसी ने ब्रिटेन का मुख उज्ज्वल किया। आयलैंड को स्वराज्य दिलाया। इसी ने जापान, जर्मनी, और अमेरिका के ग़रीबों के पेट की धधकती ज्वाला शांत की। अतः हमें भी साक्षरता के लिये आंदोलन करना होगा। यही हमारी सफलता की ताली है।

अब आपके सामने प्रश्न यह आता है कि जहाँ ९२ प्रतिशत निरक्षर हैं, वहाँ हम इतना जल्द सबको साक्षर कैसे बना सकते हैं ? मानव-जाति से कोई काम असंभव नहीं। रूस से हमारी हालत बुरी नहीं। १९२० से पहले रूस में पाँच प्रतिशत भी साक्षर नहीं थे। परंतु दस बरस के सामूहिक जन-आंदोलन ने रूस को बदल डाला। आज रूस पर कोई देश उँगली नहीं उठा सकता। यदि हिंदुस्थान के भी शिक्षित इसमें अपना हाथ बटा दें, तो पाँच वर्ष के भीतर उनका देश पूर्ण-भारत हो जायगा, और फिर ढूँढ़ने पर भी एक निरक्षर न मिलेगा। भारत का भविष्य उज्ज्वल दिखाई दे रहा है। इन दिनों सात प्रांतों में जनता की सरकार है, और शेष प्रांतों में भी जल्द कांग्रेसी मंत्रिमंडल क़ायम होने की आशा नज़र आ रही है। कांग्रेसी मंत्रिमंडल गाँवों को साक्षर बनाने के लिये बेचैन हैं। वे एक बड़ी रक़म इस योजना में ख़र्च कर रहे हैं। युक्तप्रांत का मंत्रिमंडल ४ हज़ार गाँवों में वाचनालय और पुस्तकालय खोलेगा। बिहार के शिक्षा-मंत्री माननीय डॉक्टर महमूद साहब निरक्षरता का अंत करने पर तुल गए हैं। एक रोज़ आपने बिहार-एसेंबली-भवन में यहाँ तक कह डाला था कि मैं प्रधान मंत्री के साथ गाँवों में घूम-घूमकर निरक्षर भाइयों को पढ़ाऊँगा। आप अपनी बातें पूरी करने में अपनी सारी शक्ति लगा रहे हैं। आपने पटने में, ता० २६-४-३८ को, निरक्षरता दूर करने के लिये एक सभा बुलाई थी। आपने

प्रांत के विद्यार्थियों, शिक्षकों तथा शिक्षितों से अपील की है कि वे छुट्टियों में गाँव-गाँव रात्रि-पाठशाला खोलकर निरक्षर भाइयों को शिक्षित बनावें। इससे सुंदर दिन भला अब देश के लिये कब आएगा ? बिहार के शिक्षा-मंत्री के पवित्र देश-प्रेम का पता आप इसी से लगा सकते हैं कि चार दिन के मंत्रित्व में आपने प्रजा की भलाई के लिये क्या-क्या सोच डाला। मि० के० टी० शाह आदि विशेषज्ञों को बुलाकर शिक्षा की नई योजना तैयार कराई। मिलों के जुल्मों को रोकने तथा ईख को अधिक-से-अधिक क़ीमत दिलाने के लिये शुगर-कंट्रोल-बोर्ड क़ायम किया। किसानों की दशा सुधारने के लिये एग्रीकलचर-कमेटी क़ायम की, और आज उन्हें साक्षर बनाने पर तुले हुए हैं। मैं हिंदुस्थान के प्रसिद्ध नेता डॉक्टर साहब के इस कार्य की हृदय से तारीफ़ करता हूँ, और आशा करता हूँ, पटने से डॉक्टर साहब द्वारा साक्षरता की किरण उदित होकर भारत के कोने-कोने में तुरत फैल जायगी।

जिस दिन डॉक्टर साहब की अपील पर ध्यान देकर बिहार के ही नहीं, वरन् देश के शिक्षित, नवयुवक विद्यार्थी तथा शिक्षक प्रत्येक गाँव में एक रात्रि-पाठशाला और एक वाचनालय खोल पढ़ाना शुरू कर देंगे, उसी दिन निरक्षरता हमारे यहाँ से चल बसेगी। छुट्टी के दिनों में कॉलेज तथा स्कूल के विद्यार्थी या अन्य नौकरी-पेशेवाले शिक्षित अपने घर आते हैं। उन्हें अपने-अपने गाँवों का भार ले, ग्राम-कमेटी बुला,

यदि ग्राम-कमेटी क़ायम न हुई हो, तो क़ायम कर, उसी गाँव के खर्चे से एक रात्रि-पाठशाला तथा एक वाचनालय खोल पढ़ाना आरंभ कर देना चाहिए। यदि नज़दीक के गाँवों में प्रबंध न हो सका हो, तो वहाँ भी जाकर पाठशाला और वाचनालय खोलने का प्रबंध कर देना चाहिए। ग्राम-कमेटी, कांग्रेस-कार्यकर्ताओं तथा स्कूल के लड़कों द्वारा आठवें दिन जुलूस निकाल निरक्षरता भगाने का आंदोलन करना चाहिए। जुलूस में निम्न-लिखित नारे लगाए जाने चाहिए—

"अपढ़ रहना भारी पाप है। रात्रि-पाठशाला में पढ़ने आओ। रात्रि-पाठशाला की मदद करो। गाँव-गाँव पाठशालाएँ और पुस्तकालय खोल दो। पढ़ने से ही मुक्ति मिलती है। पढ़े को साहूकार ठग नहीं सकते, पटवारी धोखा नहीं दे सकते। पढ़ने से ही ग़रीबी दूर होगी।"

उपर्युक्त शब्दों को सुंदर, मोटे अक्षरों में लिखकर गाँव के वाचनालय और पाठशाला के कमरे में लटका देना चाहिए। मेरे देश के लाड़लो, भारत मा के बुढ़ापे की छड़ी, राष्ट्र की थाती, समाज की पूँजी, भारत के सर्वस्व! याद रखिए, इस काम की ज़िम्मेदारी आपके ही ऊपर है। यदि आप कमर कसकर तैयार हो जायँगे, तो कोई कारण नहीं कि निरक्षरता हिंदुस्थान में रह जाय! आज ही रात्रि-पाठशाला क़ायम कर

अपने गाँवों के उद्धार पर तुल जाइए। इस धर्म-कार्य में आपके प्रांत के शिक्षा-मंत्री आपको पूरी सहायता देंगे।

कांग्रेस द्वारा भी इस कार्य को सफल बनाने का उद्योग होना चाहिए। को-ऑपरेटिव सोसाइटीज़ के ऑफ़िसरों, खेती-विभाग के कर्मचारियों तथा पुलिस-ऑफ़िसरों को मंत्रिमंडल द्वारा ताकीद हो जाने पर उनकी सहायता से भी काफ़ी लाभ हो सकता है। साक्षरता-प्रचारक सभा प्रत्येक प्रांत में क़ायम करने की आवश्यकता है, और उसकी शाखा प्रत्येक ज़िले और थाने में क़ायम होनी चाहिए। पूरी सावधानी से कार्य करना आरंभ कर देना चाहिए।

ग्राम-कमेटी द्वारा प्रत्येक गाँव में एक-एक पाठशाला स्थापित कर उसी गाँव के एक पढ़े-लिखे, सदाचारी, शिक्षित व्यक्ति को पाठशाले का अध्यापकी के लिये चुन लेना और उसी स्कूल के साथ एक छोटा वाचनालय भी खोल देना चाहिए। वाचनालय में एक दैनिक पत्र तथा कुछ साप्ताहिक तथा मासिक पत्र, कुछ ग्राम-सुधार-संबंधी पुस्तकें, कुछ कृषि-उद्योग-धंधों की पुस्तकें, कुछ राजनीति की पुस्तकें तथा कुछ वीर महापुरुषों के जीवन-चरित्र आने चाहिए। गाँवों में जो अपना दालान दे सकें, उन्हीं के दालान में ये रात्रि-पाठशाला तथा वाचनालय स्थापित करने चाहिए। यदि घर मिलने में दिक़्क़त हो, तो पेड़ के नीचे ही पढ़ाई आरंभ हो जानी चाहिए। पीछे घर का प्रबंध होता रहेगा। गाँवों में ग़रीब से लेकर धनी

तक से, हैसियत के अनुसार, चंदा वसूल कर रात्रि-पाठशाला के लिये तेल आदि ज़रूरी ख़र्चों का प्रबंध कर लेना चाहिए। पाठशाला तथा वाचनालय के लिये ग्राम-कमेटी के सदस्यों द्वारा प्रति सातवें दिन मुठिया आदि वसूल कर, नौकरी-पेशावाले, सहृदय व्यक्तियों से रुपया ले साक्षर-कोष में जमा करते जाना चाहिए, और ज्यों-ज्यों कोष में रुपया आता जाय, पुस्तकें तथा पत्र-पत्रिकाएँ बढ़ाते जाना चाहिए।

पाठशाला में ग्राम के सभी निरक्षर भाइयों को बुलाकर पहले अक्षर-ज्ञान कराया जाय, फिर उन्हें एक छोटी-सी पुस्तक दी जाय। पुनः अंक का ज्ञान कराया जाय, फिर मन-सेर-छटाक, रुपया-आना-पाई और धूर-कट्ठा-बीघा का ज्ञान कराया जाय। जब अक्षर का काफ़ी ज्ञान हो जाय, तो उन्हें मोटे-मोटे अक्षरों में लिखित जीवन-चरित पढ़ने के लिये दिए जायँ। तीन मास बाद रामायण दी जाय। मुझे यक़ीन है, इस तरकीब से तीन मास में सारा गाँव साक्षर बन जायगा। तीन मास बाद भी उन लोगों को पुस्तकालय में आने के लिये बाध्य करना चाहिए, और उनके पढ़ने लायक़ पुस्तकें देनी चाहिए, जिससे पढ़ी बातें भूल न जायँ।

स्कूल-कॉलेजों से लड़के लंबी-लंबी छुट्टियों में घर जाते हैं, पर वे अपने राष्ट्र के लिये क्या करते हैं? मेरे भारत के भावी कर्णधार! सभी मोर्चे आप ही को लेने पड़ेंगे, अतः अगर आप भारत को ग़ुलामी से मुक्त देखना चाहते हैं, तो सर्व-

प्रथम आप निरक्षरता-रूपी कोढ़ मिटा दीजिए। छुट्टियों में अब की बार जब आप गाँव में आवें, तो अपने बुज़ुर्गों से पूछें कि आपके गाँव में ग्राम्य पंचायत क़ायम हुई या नहीं ? यदि हुई हो, और उसके साथ-साथ रात्रि-पाठशाला, ग्राम-पुस्तकालय तथा वाचनालय नियमित रूप से चल रहे हों, तो अच्छी बात है। ग्राम-पंचों से मिलकर उनकी कमी पूरी कीजिए। द्वार-द्वार जाकर, निरक्षरों को बुला-बुला रात्रि-पाठशाला में स्वयं पढ़ाइए, उन्हें साफ़ रहने का सदुपदेश दीजिए। और, यदि रात्रि-पाठशाला आदि न क़ायम हुई हों, तो ग्राम-कमेटी क़ायम कर, फ़ौरन् रात्रि-पाठशाला और वाचनालय खोलकर निरक्षरों को पढ़ाना आरंभ कर दीजिए। एड़ी से चोटी तक का पसीना एक कर दीजिए। अपने कामों की सूचना शिक्षा-मंत्री, मंत्री ज़िला-कांग्रेस-कमेटी तथा प्रांतीय कांग्रेस-कमेटी को दिया कीजिए।

नौजवान दोस्तो ! आपका परिश्रम कभी निष्फल नहीं जा सकता। आपकी प्यारी मा कातर दृष्टि से आपकी तरफ़ देख रही है। दुनिया उसे मूर्ख कहकर पुकार रही है। यह बरदाश्त करना आपकी शक्ति से बाहर की बात है। उन भोलेभाले, निरक्षर भाइयों को क्या मालूम कि उनकी प्यारी मा पराधीन है। उन्हें अब आप साक्षर बनाकर यह रहस्य बता दो, और उनके सुंदर सहयोग से मा को बरबस मुक्त कर लो। बोलो, क्या प्रतिज्ञा करते हो कि मैं इस छुट्टी में ऊपर के

कार्य-क्रम को अवश्य पूरा करूँगा ? लो, प्रतिज्ञा करो, मुझसे अब अधिक गाँवों की दुर्दशा नहीं बरदाश्त हो सकती। मैं आज ही प्रतिज्ञा करता हूँ कि इस छुट्टी में अपने ग्राम के एक-एक बच्चे से लेकर बूढ़े तक को साक्षर बनाकर चैन लूँगा।

आर्थिक समस्या हल करने के लिये गाँव के सभी शिक्षितों, कांग्रेस के कुछ कार्यकर्ताओं और कुछ अन्य प्रभावशाली व्यक्तियों की एक टोली गाँवों में निकलनी चाहिए, और उसे रुपए के लिये अपील करनी चाहिए। जो लोग बाहर नौकरी करते हों, गाँव में साहूकार हों, अथवा जिनकी आर्थिक स्थिति अच्छी हो, उनसे इस विषय में विशेष चंदा लेना चाहिए। इसके बाद घर-घर से मुठिया निकलवानी चाहिए, और रविवार को मुठिया तहसील कर इकट्ठा कर देनी चाहिए। उससे जो आमदनी हो, उसे इसी ग्राम-पाठशाला, पुस्तकालय तथा वाचनालय में खर्च करना चाहिए। अगर मुठिया अधिक आवे, तो उससे दवा का भी प्रबंध होना चाहिए। जुलूस भी रविवार को ही निकालना चाहिए।

रात्रि-पाठशाला के जो शिक्षक रक्खे जायँ, उनके खाने का प्रबंध गाँववाले कर दिया करें। जिसके पास हल हो, अपने हल से उनके खेतों को समय पर जोत दे, जिसके पास बीज हो, बीज दे दे, धोबी मुफ़्त कपड़ा धो दे, तेली मुफ़्त तेल पेर दे, बढ़ई मुफ़्त लकड़ी का काम कर दे। इस तरह उनकी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति गाँववालों द्वारा की जाय। इसी तरह

आपस के सहयोग से, विना किसी खर्च के, हिंदुस्थान के सारे गाँव शिक्षित हो जायँगे।

महाकवि बिहारीलाल का कहना है—

"जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सो बीति बहार ;
अब अलि, रही गुलाब में अपत कटीली डार।"

जिस मनुष्य ने कभी गुलाब का पुष्प न देखा हो, उसकी दृष्टि अगर पतझड़ के गुलाब के पेड़ पर पड़े, तो क्या वह यह क़बूल करेगा कि इस पेड़ में भी एक-न-एक दिन ऐसे पुष्प खिलते होंगे, जो अपने सौरभ से संसार-मात्र को मोहित कर लेते होंगे। यही हाल हमारे ग्राम-कला-कौशल का है।

सत्रहवीं सदी के पहले गाँवों में कला-कौशल उन्नति के शिखर पर आसीन था। यहाँ का सूत और कपड़े देख विदेशी चौंक उठते थे। उन्होंने सोचा, विना इन्हें अपनाए हम लाभ नहीं उठा सकते। उन लोगों ने गाँवों के मुखियों को मिलाया, और उनको काफ़ी तनख़्वाह दे अपनी कोठियों में जमादार रख लिया। ये जमादार लोग गाँवों में साहबों को लेकर कपड़े बनानेवालों को दादनी देने लगे। जो २ गज़ रोज़ कपड़ा तैयार करता, उसे १० गज़ कपड़ा तैयार करने की दादनी दी जाती। न तैयार करने पर उसकी सारी संपत्ति क़ुर्क़ करा ली जाती, तथा उसके सारे घरवालों को जेल भेज दिया जाता। इस तरह वे स्वाभिमानी कलाकार अपना अपमान बरदाश्त

करना उचित न समझ भगवान् की शरण में जा छिपे, और भारत-भूमि कलाकार-विहीन हो गई। एक-दो ने इसके विरुद्ध आंदोलन किया, पर एक-दो के करने से क्या हो सकता है ?

पर हमें यह .ज़ुल्म बरदाश्त किए बहुत दिन हो गए। हम मिट गए, पर दूसरों को मिटाना उचित नहीं समझा। परंतु अब हमें अपना घर सँभालना होगा। गाँव-गाँव में चर्खे का प्रचार हो जाना चाहिए। घर-घर स्त्रियाँ सूत कातें। प्रत्येक गाँव में एक-दो करघे का इंतज़ाम होना चाहिए, और कपड़ा बुनना सिखाना चाहिए।

इसके बाद रेशम के कीड़े पालने, रेशम का सूत तैयार करने, खपरा और ईंटा पाथने, भट्ठा लगाने, पाल बुनने, रस्सी बटने, चटाई, स्याही, साबुन, काग़ज़, लोहे के हथियार, खिलौने, आलपीन, काच की चीज़ें बनाने तथा इसी प्रकार की अन्य कारीगरी सिखाने का प्रलोभन गाँवों में देना चाहिए। कारीगरी के विषय में जो कुछ पूछ-ताछ करनी हो, अपने प्रांत के इंडस्ट्री-डिपार्टमेंट के डाइरेक्टर से करनी चाहिए। प्रत्येक प्रांत में इंडस्ट्री-डिपार्टमेंट की तरक़्क़ी के लिये एक-एक डाइरेक्टर रक्खे गए हैं। पर जनता इनसे कोई फ़ायदा नहीं उठा रही है, और न वर्तमान पद्धति से कोई भलाई की उम्मीद है। डाइरेक्टरों के पते—

१—डाइरेक्टर ऑफ़् इंडस्ट्रीज़, बिहार, पटना

२—डाइरेक्टर ऑफ़् इंडस्ट्रीज़, हिंद-प्रांत, लखनऊ

३—डाइरेक्टर ऑफ़् इंडस्ट्रीज़, बंबई

४—डाइरेक्टर ऑफ़् इंडस्ट्रीज़, मध्यप्रांत, नागपुर आदि

जिस दिन हम अपने कला-कौशल को पुनः अपना लेंगे, उसी दिन हमारा देश सुखी हो जायगा। अतः हमें कला-कौशल की तरक्की के लिये काफ़ी लगन के साथ जुट जाना चाहिए।

तीसरा परिच्छेद

कृषि

"The greatest benefactor of his country is the man, who makes two blades of grass grow where one grew before."

[A FOREIGN SOUL]

ज्यों-ज्यों हमारे उद्योग-धंधे हमसे छिनते गए, त्यों-त्यों हम अपने कुटुंब के भरण-पोषण का कोई अन्य साधन उपलब्ध न देख एकमात्र कृषि पर अवलंबित होने लगे। कृषि में बाढ़-सी आ गई। किंतु केवल कृषि किसी बड़े देश के जीवन की सारी सामग्री कैसे दे सकती है ? जन-संख्या बढ़ती ही गई, पर खेत उतने-के-उतने ही रहे। कृषि की दुर्दशा हो चली। खेत इतने टुकड़ों में बँट गए कि उस हालत में खेती करने पर हानि ही अधिक होती रही। नौबत यहाँ तक आई कि अनेकों भाइयों को जोतने के लिये खेत भी नहीं मिल सके।

सन् १८८० की फ़ैमीन-कमीशन की रिपोर्ट से पता चलता है कि ज़मीन ठीक से जोतने के लिये जितने मनुष्यों की आवश्यकता है, उससे बहुत अधिक लोग खेती करने लगे हैं। दूसरे किसी धंधे में प्रवेश न होने के कारण उन्हें खेती में ही जाना

पड़ा। १८८० ईस्वी से खेती करनेवालों की संख्या कितनी तेज़ी से बढ़ती गई, यह आगे के आँकड़ों से ज्ञात होगा। १८८१ में खेती से जीविका करनेवाले लोगों की संख्या ५८ प्रतिशत थी। १८६१ में वह ६१.६, १६०१ में ६६.५ और १६२१ में ७१·६ तक पहुँची। कुल जन-संख्या का ७३·६ प्रतिशत खेती पर गुज़ारा करता है, यह रॉयल कमीशन का मत है। किंतु इसके विरुद्ध, इन्हीं वर्षों में, योरप के अनेकों राष्ट्रों में खेती करनेवालों की संख्या कम होती गई। फ्रांस में, १८७६ में, खेती पर निर्भर रहनेवालों की संख्या ६७·६ प्रतिशत थी। १६२१ में ५३·६ प्रतिशत हो गई। जर्मनी में, १८७५ में, ६१ प्रतिशत थी, १६१६ में ३७·८ प्रतिशत हो गई। डेन्मार्क में, १८८० में, ७१ प्रतिशत थी, १६२१ में ५७ प्रतिशत हो गई। इँगलैंड और वेल्स में, १८७१ में, ३८·२ प्रतिशत थी, १६२१ में २०·७ प्रतिशत हो गई।

इन आँकड़ों से ज्ञात होता है कि ५० वर्ष पहले फ्रांस, जर्मनी और डेन्मार्क से हिंदुस्थान के किसानों की प्रतिशत संख्या कम थी। किंतु इन राष्ट्रों ने धीरे-धीरे अपने उद्योग-धंधों की वृद्धि करके किसानों की संख्या घटाई। हिंदुस्थान में परिस्थिति इसके विपरीत हुई। उन दिनों योरप में औद्योगिक क्रांति हो रही थी, अतः भारत में ग्राम-धंधे गोरों द्वारा नष्ट किए जाने के कारण सारा देश कृषिमय हो रहा था।

हिंदुस्थान के नगरों और गाँवों के हस्त-कौशल के उद्योग-धंधे

जैसे-जैसे नष्ट होते गए, वैसे-वैसे उनमें से निकले हुए लोग खेती में लगते गए। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जिन थोड़े-से आधुनिक उद्योग-धंधों का निर्माण हुआ, उनसे देश के हस्त-कार्य करनेवालों में से किसी को अच्छा काम नहीं मिला।

इस प्रकार जिनके पास खेती करने के लिये अपनी निज की ज़मीन नहीं, ऐसे खेती करनेवाले मज़दूरों की संख्या गत पचास वर्षों से उत्तरोत्तर बढ़ती ही जा रही है। इस समय कुल खेती करनेवाले लोगों में विना खेतवाले भाइयों की संख्या ३३ प्रतिशत है। उनमें अधिकतर हरिजन हैं। किंतु यह ध्यान रखना चाहिए कि आज हिंदुस्थान में ज़मीन की बिलकुल कमी नहीं है, कुल ज़मीन में ३४.२ ज़मीन अभी जोती जा रही है। खेती के उपयोग में न लाई जा सकने योग्य ३५.२ प्रतिशत ज़मीन यदि छोड़ दी जाय, तो भी खेती के लिये जोतने लायक़ ज़मीन ३०.६ बच जाती है। सिंधु और पंजाब में कितनी ज़मीन उजाड़ पड़ी है। नहर निकालकर वहाँ पानी देने की भारत-सरकार की इच्छा नहीं। उधर क़र्ज़ में डूबे हुए किसानों के पास पैसा संचित करने और उसे खेती में लगाने की शक्ति कहाँ? सरकार इस प्रश्न की ओर ध्यान देना नहीं चाहती, अतः उससे भी पैसे की मदद मिलना असंभव है।

पहले लिखा जा चुका है कि खेती करनेवाले लोगों की संख्या तेज़ी से बढ़ जाने के कारण ज़मीन के भी छोटे-छोटे टुकड़े हो

गए। ज़मीन के हिस्से करने की यह घातक पद्धति ब्रिटिश शासन-काल में तेज़ी से बढ़ती गई। डॉक्टर हेराल्डमैन ने एक गाँव की जाँच की, और बताया कि १७७१ में सामान्यतः एक ज़मीन ४० एकड़ थी, किंतु वही १६१५ में ७ एकड़ कर दी गई। डॉक्टर साहब ने लिखा है—गत ६०-७० वर्षों में ज़मीन का स्वरूप ही बदल गया। ब्रिटिश राज्य-काल के पहले और प्रारंभ-काल में खेत बहुत बड़े, ६ एकड़ से अधिक आकार के, होते थे। दो एकड़ से कम का खेत तो कहीं नहीं मिलता था। आजकल खेतों की संख्या पहले से दुगुनी या उससे भी अधिक हो गई है। उनमें ८१ प्रतिशत खेत १० एकड़ के हैं, और ५ प्रतिशत खेत तो केवल ५ एकड़ के।

हिंदुस्थान में ज़मीन का विभाजन किस परा काष्ठा तक पहुँच गया है, यह नीचे के अंकों से ज्ञात होगा। युक्त-प्रांत में प्रत्येक काश्तकार के हिस्से में औसतन् २'५ एकड़ ज़मीन आती है और बंगाल में ३'१, आसाम में ३, बिहार और उड़ीसा में ३'१, मद्रास में ४'१, मध्यप्रांत में ८.५, पंजाब में ६'२ और बंबई-प्रांत में १२.२ एकड़। परंतु इस औसत से भी पूरी पारस्थिति की उचित कल्पना नहीं हो पाती, क्योंकि इसमें बड़ी-बड़ी ज़मीनों को भी सम्मिलित किया गया है, जिनके जोतने से काश्तकारों को कुछ फ़ायदा नहीं होता। ऐसे छोटे-छोटे खेतों का प्रमाण आगे दिए हुए आँकड़ों से ज्ञात हो जायगा। १६२६ में 'एग्रीकल्चरल जर्नल ऑफ़ इंडिया'

में ब्रिटिश हिंदुस्थान के खेतों का आकार इस प्रकार का दिया है—

१ या उससे कम एकड़ का खेत	२३	प्रतिशत
१ से ५ एकड़ के खेत	३३	,,
५—१० ,,	२०	,,
१० से अधिक ,,	२४	,,

हिंदुस्थान के अन्य प्रांतों से पंजाब की खेती अच्छी समझी जाती है। परंतु वहाँ की खेती का चित्र 'रॉयल एग्रीकल्चरल कमीशन' ने इस प्रकार चित्रित किया है—

"पंजाब-प्रांत के आँकड़ों से मालूम होता है कि कुल काश्तकारों में से २२.५ प्रतिशत १ एकड़ या उससे कम, १५ प्रतिशत १ और २.५ एकड़ के लगभग और २०.५ प्रतिशत ५ से १० एकड़ तक ज़मीन जोतते हैं। पंजाब के एक गाँव का अवलोकन करने के बाद ज्ञात हुआ है कि वहाँ के काश्तकारों में ५५ प्रतिशत के पास अपनी निजी ज़मीन ३ एकड़ से कम है, और २३ प्रतिशत ६ एकड़ से भी कम जोतते हैं।

किसी कृषि-तत्त्ववेत्ता ने पंजाब के २,३६७ देहातों का अवलोकन किया। उससे वह इस नतीजे पर पहुँचा कि लोगों के पास ख़ुद की जो ज़मीन थी, उसमें १७.६ प्रतिशत खेत १ एकड़ से भी कम थे। २५.५ प्रतिशत खेत १ से तीन एकड़ के अंदर के थे। १४.६ प्रतिशत खेत ४ से ५ एकड़ के और १८ प्रतिशत ५ से १० एकड़ के थे।

हिंदुस्थान के अन्य प्रांतों की अपेक्षा बंबई-प्रांत में खेत बहुत बड़े हैं। किंतु वहाँ भी अधिकांश ज़मीन २ से ३ एकड़ या उसके अंदर की है। ५ एकड़ से कम आकार की ज़मीन तेजी से बढ़ रही है। १६२७ में 'रॉयल कमीशन ऑफ़् एग्रीकल्चर' ने जो प्रमाण एकत्र किया, उससे पता चलता है कि १६१७ से १६२२ तक बंबई के एक उपजाऊ ज़िले में १५ एकड़ से कम ज़मीन की संख्या में बहुत वृद्धि हुई, और २५ से १०० एकड़ की ज़मीन में उसी अनुपात से कमी हुई।

मद्रास-प्रांत का विशेष अवलोकन करने से यह प्रतीत हुआ कि वहाँ की अधिकांश ज़मीन १ एकड़ से कम है। बिहार और उड़ीसा की ज़मीन का आकार तो १/४ एकड़ से भी कम है।

पंडित बाबूराम मिश्र ने कानपुर-ज़िले के एक गाँव का निरीक्षण किया। वहाँ के कुल २५० काश्तकारों में से १४० एक एकड़, ५० दो एकड़, ४२ तीन एकड़, १६ पाँच एकड़ और केवल १४ दस एकड़ ज़मीन जोतते थे।

इसी प्रकार मि० जे० के० माथुर ने जब गोरखपुर-ज़िले के एक देहात का अवलोकन किया, तो वहाँ औसतन् ज़मीन का आकार २६ एकड़ निकला, और प्रत्येक काश्तकार के हिस्से में औसतन् ५२ एकड़ ज़मीन आई। उस गाँव की जोतने योग्य ज़मीन २७ एकड़ थी।

संयुक्त-प्रांत के गत सेटिलमेंट के विवरण से सिधुआ-परगने

में एक ज़मीन का आकार १·३ एकड़, जोबन-परगने में ·६ एकड़ और हाटा तथा सलीमपुर में ·६५ एकड़ था। युक्तप्रांत की कुल ज़मीन में से ५६ प्रतिशत ज़मीन के जोतने से काश्तकारों को कुछ लाभ नहीं होता। बैंकिंग इन्कायरी कमेटी ने यह सिद्ध कर दिया है।

संपूर्ण हिंदुस्थान की ज़मीन में से ७६ प्रतिशत ज़मीन १० एकड़ से कम आकार की है। इसमें भी १५·४ ज़मीन तो १ एकड़ से भी छोटी है।

पैत्रिक भूमि का सम भाग पुत्रों में बाँटने की पद्धति से ज़मीन का विभाजन होता है। किंतु पैत्रिक खेती सब एक-सी ही उपजाऊ नहीं होती, और उपजाऊ ज़मीन के सभी अधिकारी हैं। इससे अच्छी और बुरी, दोनो प्रकार की ज़मीन के विभाग करने पड़ते हैं। पिता की मृत्यु होने पर प्रत्येक बार विभाग होने के कारण अंत में ज़मीन के बहुत छोटे-छोटे टुकड़े हो जाते हैं। ज़मीन का विभाग करने की यह पद्धति कहाँ तक पहुँच गई है, यह आगे दिए हुए आँकड़ों से मालूम होगा—

एक गाँव की जाँच करने पर डॉक्टर हेराल्डमैन को यह मालूम हुआ कि वहाँ कुल १५६ काश्तकारों के पास खुद के ७२६ खेत थे, उनमें से ४६३ खेत एक एकड़ से कम आकार के थे, और ११२ पाव एकड़ से भी अधिक छोटे। कोंकण के कुछ भाग में, विशेषतः रत्नागिरि-ज़िले में, बहुत-से जमीन के टुकड़े ·००६२५ एकड़ यानी सवा तीस चौरस गज़ छोटे हैं।

रामपुर (पंजाब) गाँव के अवलोकन से यह ज्ञात हुआ कि उस देहात की कुल जमीन १,५१८ खेतों में बँट गई थी, वहीं एक खेत का आकार औसतन् एक पंचमांश एकड़ के बराबर छोटा आता था। २७ प्रतिशत ज़मीन में ३० से भी अधिक खेत थे। और, तीन स्थानों में तो ज़मीन के इतने टुकड़े हुए थे कि उनमें से सबसे छोटा टुकड़ा ·०१४ एकड़ का था। अर्थात् इतने छोटे टुकड़ों की देख-भाल करना मालिकों के लिये शक्य न था, इसलिये नज़दीक के काश्तकारों ने ये टुकड़े अपनी जमीन में जोड़ लिए थे। कहीं - कहीं तो जमीन के समान कुएँ भी बाँटे जाते हैं।

पंजाब में ज़मीन के हिस्से के बारे में मि० अर्लिंग कहते हैं—"जालंधर-ज़िले के एक गाँव में १,२८० एकड़ जमीन का ६३,००० खेतों में विभाजन हुआ है। दूसरे एक गाँव में एक सप्तमांश एकड़ से भी छोटे आकार के १६·००० खेतों को ५८४ काश्तकार जोतते हैं, और तीसरे गाँव में ६ एकड़ से भी छोटे ४२४ खेत मिले।"

भूमि-विभाजन की यह घातक पद्धति संपूर्ण हिंदुस्थान में जारी है। भूमि-विभाजन शास्त्रीय दृष्टि से किया हुआ कहीं नहीं दिखाई देता। शायद ही किसी ज़मीन को कम-से-कम तीन-चार खेतों में न बाँटा गया हो।

इसी प्रकार ज़मीन के छोटे-छोटे टुकड़े हो जाने के कारण

काश्तकारों को उसके जोतने से कुछ लाभ नहीं होता। पहले से ही छोटी ज़मीन को छोटे-छोटे खेतों में बाँट दिए जाने से बड़े पैमाने में, अच्छी पद्धति से, खेती करना अशक्य हो जाता है। जो ज़मीन है, उसे ही खाद देकर उपजाऊ बनाएँ, तो हिंदुस्थान के दरिद्र किसानों के पास उतना पैसा नहीं। इस कारण खेती के साधनों में भी सुधार नहीं होता। किसान बारी-बारी से बदल-बदलकर नाज की फ़सल उत्पन्न नहीं कर सकता। ज़मीन और पशु आदि की वह उचित देख-भाल नहीं कर सकता। खेती से एक तो लाभ बहुत कम होता है, उस पर किसी वर्ष यदि वर्षा न हुई, कीड़ों अथवा अन्यान्य प्रकार के उपद्रवों से फ़सल नष्ट हो गई, तो बेचारा काश्तकार नेस्त-नाबूद हो जाता है। इन दुष्परिणामों के साथ ही ज़मीन के छोटे-छोटे टुकड़े करने से बहुत-सी ज़मीन मेड़ों में व्यर्थ जाती है। खेतों की पूरी देख-भाल नहीं हो पाती। एक खेत से दूसरे खेत पर जाने में बहुत समय नष्ट हो जाता है, और खेत की सीमा की बाबत यदि पड़ोसी काश्तकार से झगड़ा शुरू हुआ, तो गाँठ में पैसा न होते हुए भी दोनो को अदालत की सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ती हैं। साथ ही छोटे-छोटे खेतों के कारण फ़सल अच्छी आती ही नहीं, और काश्तकार आवश्यक पशु तक नहीं पाल सकता। नीचे के आँकड़ों से गोरखपुर, लखनऊ तथा मेरठ-ज़िलों में प्रत्येक ज़मीन में कितने मवेशी हैं, यह आप जान सकेंगे—

	गाड़ी अथवा हल खींचनेवाले बैल	गाय और बछड़े
गोरखपुर	१·२	१·३
लखनऊ	२·१	२·१
मेरठ	२·०	२·१

गत कुछ वर्षों से हिंदुस्थान में पशु, मुर्गी, बतख़ आदि प्राणियों की संख्या दिन-दिन कम हो रही है। चराई के लिये रक्खी गई ज़मीन कम-से-कम होती गई है, इस कारण कुछ प्रदेशों में खेती के लिये आवश्यक पशु काश्तकार पाल ही नहीं सकते।

मवेशियों को पेट-भर चारा न मिलने के कारण उनसे जितना चाहिए, उतना काम भी नहीं लिया जा सकता। काश्तकारों का जीवन अनेकांश में अपने-अपने पशुओं पर अवलंबित रहता है, अतः पशु-पत्ती मरने लगे कि सर्व-साधारण काश्तकार कंगाल हो जाते हैं। बहुत-से काश्तकारों के पास उनके निज के पशु तक नहीं होते। फ़सल की बुआई के लिये उन्हें किराए पर दूसरों के बैल लाना शक्य नहीं होता, उन्हें स्वयं पशुओं का काम करना पड़ता है। अपनी छोटी-सी ज़मीन किसी प्रकार भी जोतकर पेट पालना पड़ता है।

ऐसी परिस्थिति में संसार के अन्य किसी भी राष्ट्र से हिंदुस्थान में खेती की एकड़ पीछे उपज यदि कम होती हो, तो उसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। १६२२ के निम्न-लिखित कोष्ठक से भिन्न-भिन्न देशों में प्रति एकड़ कितनी उपज होती है, यह भले प्रकार समझ में आ जायगा—

राष्ट्र	गेहूँ	नाज	जौ	चावल	कपास	तंबाकू
	६० पौंड का बुशल	३४ पौंड का बुशल	४८ पौंड का बुशल	पौंड	पौंड	पौंड
कनाडा	१७.८	४३.४	२७.६	—	—	—
युनाइटेड स्टेट्स	१३.९	२७.३	२४.९	१०.९०	१४.१०	७३५.६
इँगलैंड	३१.२	—	३१.०	—	—	—
डेन्मार्क	३९.०	—	४५.६	—	—	—
फ्रांस	१८.६	१६.९	२३.९	—	—	१४२६.१
इटली	१४.१	२०.२	१४.३	२१५१	—	९१७.९
इजिप्ट	२४.१	३६.३	३०.१	१४५५ (१९२१)	२९९.०	—
हिंदुस्थान	१३.०	१५.६	१९.८	९११	१८०	—
जापान	२२.५	२७.७ (१९२१)	३१.७	२४७७	—	—
आस्ट्रेलिया	१९.२	२५.७	२१.३ (१९२१)	—	—	—

"महायुद्ध के पहले के वर्षों में ब्रिटिश हिंदुस्थान में जहाँ नहर के पानी का प्रबंध है, वह प्रदेश मिलाकर भी एक एकड़ ज़मीन का उत्पन्न नाज पचीस रुपयों से अधिक का नहीं हो सकता। जापान में वही उत्पत्ति एक सौ पचास

रुपयों से कम नहीं थी ।" यह मि० एस्० अप्पा का अनुमान है।

परंतु इससे गत वर्षों में हिंदुस्थान की ज़मीन कम उपजाऊ और नीरस होती जा रही है, ऐसे अनुमान के लिये आधार नहीं है। 'रॉयल कमीशन ऑफ् एग्रीकल्चर' के सामने अपनी साक्षी में हिंदुस्थान-सरकार के कृषि-विभाग के सलाहकार डॉ० क्लाउस्टन ने कहा—"हिंदुस्थान की अधिकांश ज़मीन सैकड़ों वर्ष बाद ही अनुर्वर दशा को पहुँचनी चाहिए। इसके बाद यदि सैकड़ों वर्ष विना खाद दिए फ़सल पैदा की जाय, तो भी उससे ज़मीन का कुछ नुक़सान न होगा। सर्व-सामान्य फ़सल के लिये प्रति एकड़ बीस पौंड नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है, और इतना नाइट्रोजन हवा और पानी होने के बाद फ़सल की जो जड़ें ज़मीन में रह जाती हैं, तथा वहाँ सड़ जाती हैं, उनसे प्रतिवर्ष अनायास ही प्राप्त होता जाता है।

यह बात विशेषतः ध्यान में रखनी चाहिए कि इँगलैंड और जर्मनी में ५० प्रतिशत ज़मीन ५० एकड़ से अधिक आकार की है, और एक से पाँच एकड़ ज़मीन इँगलैंड में केवल १'१ प्रतिशत और जर्मनी में ४'३ प्रतिशत है। किंतु हिंदुस्थान में ७६ प्रतिशत ज़मीन १० एकड़ से कम आकार की है। और, कुल ज़मीन में से १५'४ प्रतिशत ज़मीन १ एकड़ से भी छोटी है, यह ऊपर बताया जा चुका है। इसके साथ ही इँगलैंड और

जर्मनी की ज़मीन की प्रति एकड़ उपज का हिंदुस्थान की प्रति एकड़ उपज के साथ मिलान करके देखने से आकाश-पाताल का अंतर मालूम होगा।

खेती के आधुनिक औज़ारों को दृष्टिकोण में रखते हुए क़र्ज़ लेने के लिये प्रत्येक काश्तकार को काफ़ी रुपए की आवश्यकता पड़ेगी। मि० फ़िटिंग ने अपनी 'रूलर इकॉनामी इन विडेक्सन'-नामक पुस्तक में लिखा है—"जुताई आदि का सब ख़र्च घटाने के बाद अपना और अपने कुटुंब का पालन-पोषण भले प्रकार करने के लिये दक्षिण-हिंदुस्थान में ऐसी ४० या ५० एकड़ की अखंड और उपजाऊ ज़मीन प्रत्येक किसान के पास अवश्य होनी चाहिए, जिसमें एक अच्छा कुआँ और एक मकान हो।"

उत्तर-बिहार के किसानों के पास २० एकड़ से ३० एकड़ तथा दक्षिण-बिहार के कृषकों के पास ४५ एकड़ तक ज़मीन हो, तो उनकी जीविका चल सकती है। पर क़र्ज़ का पटाना उनकी आमदनी से संभव नहीं। युक्तप्रांत के प्रत्येक काश्तकार के हिस्से में क़रीब ३० एकड़ ज़मीन हो, तभी उसकी जीविका चल सकती है। यह स्टैनली का मत है।

इन आँकड़ों में अतिशयोक्ति की संभावना नहीं, क्योंकि जिनके पास इतनी ज़मीन अभी है, वे भी ऋण-ग्रस्त मालूम पड़ते हैं। डॉ० ई० डी० ल्यूक्स ने होशियारपुर-ज़िले के बहरामपुर-गाँव में जाकर वहाँ के काश्तकार-कुटुंबों का

निरीक्षण किया। उससे उन्हें ज्ञात हुआ कि ऋण लिए विना १४ एकड़ ज़मीन की उपज से एक जाट-कुटुंब का निर्वाह नहीं हो सकता। मि० डालिफा का कहना है— पंजाब में दूसरे किसी सहायक उद्योग के विना ६ या १० एकड़ ज़मीन से एक काश्तकार का पेट नहीं भर सकता।

अंतरराष्ट्रीय कृषि की परिस्थिति पर ग़ौर करते हुए हमें यह कहना पड़ता है कि अन्य देशों की कृषि के लिये किसानों को जितनी सहायता सरकार द्वारा दी जाती है, उतनी यदि हमारे देश के किसान भाइयों को मिले, तो निःसंदेह केवल बिहार-प्रांत के अन्न की उपज से सारे हिंदुस्थान के लोग निर्वाह कर सकते हैं। पर सरकार ऐसा करने के लिये तैयार नहीं। किसी साल ओले तो किसी साल पाले ही फ़सल का सत्यानास कर डालते हैं, बाढ़ की तो बात बताने की आवश्यकता ही नहीं, सबको ज्ञात ही है। किसान बेचारे हाथ मलकर रह जाते हैं। उन्हें इन विपत्तियों से बचाने का कोई साधन बिहार-प्रांत में—और अन्य प्रांतों में—भी उपलब्ध नहीं।

पर अन्य देशों में कृषि पर आनेवाली प्रत्येक आपत्ति से किसानों को बचाने का समुचित प्रबंध किया जाता है। ओले और पाले से भी फ़सल को नष्ट होने से बचाने की व्यवस्था की जाती है। जहाँ वर्षा नहीं होती, वहाँ नहर

निकालकर पानी का प्रबंध किया जाता है। कृषि को लाभ पहुँचाने के विचार से अनुसंधान में करोड़ों रुपए खर्च किए जाते हैं, और तरह-तरह के नए-नए तरीक़े काम में लाए जाते हैं। दूर की बात जाने दीजिए। साइबेरिया में पहले गेहूँ नहीं होता था। रूस-सरकार ने उस ज़मीन में ऐसी शक्ति उत्पन्न कर दी कि वहाँ अब प्रतिवर्ष लाखों मन गेहूँ पैदा हो रहा है। साइबेरिया के नारंगी, अनार आदि फल मीठे नहीं होते थे, वहाँ की सरकार ने काफ़ी रुपया खर्च कर वहाँ की मिट्टी में ऐसी शक्ति पैदा कर दी कि अब वहाँ के नारंगी और अनार भी और देशों के समान ही मीठे हो रहे हैं।

जर्मन गाएँ दूध तो देती हैं, पर उनके दूध में मक्खन बहुत कम होता है। इसके विपरीत तिब्बत की गाएँ दूध कम देती हैं, पर मक्खन अधिक परिमाण में निकलता है। रशिया की सरकार ने अनुसंधान द्वारा ऐसा पदार्थ तैयार किया, जिसे खिलाकर तिब्बत की गायों में जर्मन गायों-सा दूध और जर्मन गायों में तिब्बत की गायों-सा मक्खन मिल रहा है। पर हमारी सरकार तो विदेशी है, उसे क्या पड़ी है कि भारत के किसानों की कृषि-समस्या हल करे। हाँ, प्रांतीय शासन की बागडोर चंद प्रांतों में जनता के विश्वासपात्र नेताओं के हाथ में होने से कृषि में सुधार होने की आशा दिखाई दे रही है। प्रांतीय शासन के सूत्रधार इस चिंता में हैं कि किस प्रकार किसानों को कृषि में सहायता पहुँचाई जाय। पर वे भी संतोष-जनक

सहायता पहुँचाने में असमर्थ हैं, क्योंकि नई शासन-व्यवस्था में ब्रिटिश सरकार ने हमारे मंत्रियों को यह अधिकार नहीं दिया कि वे फ़िजूल खर्च रोक उन रुपयों को प्रजा की भलाई में खर्च कर सकें। वे चाहते हुए भी प्रजा की भलाई के काम नहीं कर पाते, अतः कृषि में भी हमें अपनी सहायता अपने ही आप करनी पड़ेगी, तभी हमारी दशा सुधरेगी।

प्रत्येक प्रांत में प्रांतीय सरकार द्वारा कृषि में नाम-मात्र के रुपए व्यय होते हैं, उससे ग़रीब किसान को कोई लाभ नहीं होता। कृषि-विभाग के ओवरसियर बाबू लोग अपने को देहात का हाकिम समझते हैं। वे ग़रीबों के दरवाज़े पर भूलकर भी नहीं जाते, और न उनसे बातें करना ही उचित समझते हैं। झूठी डायरियाँ भरकर देश को धोखा दे रहे हैं। उनकी भेष-भूषा, चाल-ढाल देखकर किसान डर जाते हैं। उनसे खुलकर बातें नहीं करते। अतः सरकार को चाहिए कि कृषि-विभाग का संगठन नए सिरे से करे। कृषि-विभाग के अधिकारियों को देहाती पोशाक में रहना अनिवार्य कर दे। उन्हें ऐसी शिक्षा देने का प्रबंध करे, जिससे वे अपने को कांग्रेस के स्वयंसेवकों-सा समझें। यदि ऐसा करना संभव न हो, तो कृषि-विभाग को तोड़ डाले। क्योंकि वर्तमान हालत में कृषि-विभाग से देश के ग़रीब किसानों को कुछ भी लाभ नहीं। वर्तमान सरकार कृषि में कुछ अधिक रुपए ख़र्च करने का प्रबंध तो कर रही है, पर कृषि-विभाग के अफ़सरों का

दृष्टिकोण नहीं बदल रही है। व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों को अपने-अपने प्रांत की सरकार का ध्यान इस तरफ़ खींचना चाहिए, जिससे मंत्री महोदय इस विषय में उचित कार्रवाई कर सकें।

प्रत्येक ज़िले में कृषि-विभाग के कुछ ओवरसियर किसानों की सहायता करने के लिये प्रांतीय सरकार द्वारा रक्खे गए हैं। यदि वे किसानों के पास नहीं पहुँचते, तो किसानों को ही उनके पास पहुँचना चाहिए, और कृषि के संबंध में उनसे राय लेनी चाहिए। उन्हें अपने यहाँ बुलाकर खेत जोतने-बोने, खाद देने, खाद सड़ाने आदि के तरीक़े उनसे सीखने चाहिए। वे कृषि-संबंधी सभी बातें बिना किसी फ़ीस के बताएँगे।

कृषि के संबंध में अनेक पुस्तकें हिंदी में लिखी जा चुकी हैं, जिनमें कृषि करने के उत्तम तरीक़े बताए गए हैं। उन्हें मँगाकर, पढ़कर, उनमें बताए तरीक़ों के अनुसार कृषि करनी चाहिए।

हमारे देश के किसान खेती के तरीक़ों को बिलकुल भूल गए हैं। उन्हें यदि कृषि से लाभ उठाना हो, तो सतर्कता से काम लेना पड़ेगा, तथा कृषि करने का तरीक़ा सीखना पड़ेगा।

कृषि में (१) खेत की जुताई, (२) उसकी उचित खाद्य और (३) उचित बीज, इन्हीं तीन पर ध्यान देने की विशेष आवश्यकता है।

खेत की जुताई जितनी ही गहरी होगी, उतनी ही अधिक उपज होगी। जुताई के लिये लोहे का हल काम में लाना चाहिए। भिन्न-भिन्न प्रकार की फ़सल के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार के हल की आवश्यकता है। उसकी पूरी जानकारी के लिये अपने ज़िले के कृषि-विभाग के ओवरसियर से पूछना या कृषि की पुस्तकें पढ़नी चाहिए।

खेतों में विना उचित खाद दिए काफ़ी अन्न पैदा नहीं हो सकता, अतः खाद पर भी ध्यान देने की बड़ी आवश्यकता है। कच्चे गोबर की खाद खेत को ऊसर बना देती है, अतः गोबर या कोई खाद विना सड़ाए नहीं देनी चाहिए। सनई, धनचा सड़ाने से भी उत्तम खाद तैयार होती है। और भी अनेक प्रकार की विलायती खाद हैं, जिन्हें खेत में देने से उपज बढ़ती है।

बीज यदि सड़ा-गला दिया गया, तो खेत में उगेगा ही नहीं, अतः बीज पुष्ट देना चाहिए। गाँवों में ग्राम-को-ऑपरेटिव सोसाइटी खोलकर उत्तम बीज देने का प्रबंध करना चाहिए।

किसान भाइयों को उसी चीज़ की खेती करनी चाहिए, जिससे अधिक-से-अधिक रुपए मिल सकें। यदि खेत कम हो, तो धान-गेहूँ-चना न बोकर फूट, ख़रबूज़ा, तरबूज़, मूली, गाजर, लहसन, प्याज़, टमाटर, साग-भाजी, आलू, गोभी, लौकी और कंद आदि बोना अधिक लाभदायक होगा।

जितना रुपया आप पाँच एकड़ गेहूँ बोकर नहीं पदा कर

सकते, उतना पाँच गट्ठे साग-सब्ज़ी बोकर पैदा कर सकते हैं। ग़रीब परिवार के लिये साग-सब्ज़ी बोना बहुत श्रेयस्कर होगा। व्यापारिक विचार से भी साग-सब्ज़ी और बाग़बानी बहुत ही लाभदायक सिद्ध होती है। कृषि में यदि रुपए कमाना हो, तो आँख मूँदकर तरकारियों की खेती तथा बाग़बानी करें*। तरकारियाँ उचित समय पर बोई जायँ। जिस समय कहीं न मिलें, उस समय आपके खेत में मिलें। जैसे आप ऐसे समय में परवल बोवें कि फाल्गुन तक ख़ूब फलने लगे। उस समय आप बड़े-बड़े शहरों में मज़े से बारह आने सेर बेच सकेंगे। यही हाल आलू टमाटर, गोभी आदि तरकारियों का भी है।

बाग़बानी

बाग़बानी करना तो हम बिलकुल ही भूल गए हैं। पेड़ बोते हैं, पर उसे सींचना नहीं आता। अतः बाग़बानी के संबंध में अपने प्रांत के कृषि-विभाग के डाइरेक्टर से पूरा परामर्श लेकर हमें बाग़बानी करनी चाहिए। हमारा ख़याल है, जो रक़म हम २५ एकड़ खेत बोकर पैदा नहीं कर सकते, उतनी रक़म हम एक एकड़ खेत में बाग़बानी करके पैदा कर सकते हैं। फ़र्ज़ कीजिए, एक एकड़ में अगर ८० बेल के पेड़ रोपें, और प्रत्येक पेड़ से यदि हमें ५) भी प्रतिवर्ष मिलें, तो प्रत्येक साल ४००)

* कृषि-संबंधी विशेष जानकारी के लिये आप कृषि-विभाग के अफ़सरों से राय लीजिए। वे भारत के प्रत्येक ज़िले में हैं।

एक एकड़ भूमि से मिलेगा। इसी प्रकार की आमदनी हमें केले, कटहल, अमरूद, पपीता, बाँस, आम और लीची आदि से हो सकती है। अतः यदि हम चाहते हैं कि खेती से हमें कुछ रुपए मिलें, तो हमें अवश्य बाग़बानी करनी होगी। बाग़बानी में सब चीज़ बोने से कुछ फ़ायदा नहीं हो सकता। अतः कोई एक चीज़ बोइए, जो जल्द तैयार हो, और काफ़ी रुपए दे। बाग़बानी में खाद आदि का उचित प्रबंध रखना चाहिए।

फुलवारी हमेशा कोड़ते रहना चाहिए, खाद देनी चाहिए, तथा उसके भोज्य पदार्थ की सारी व्यवस्था करनी चाहिए। असावधानी से बाग़बानी में लाभ नहीं हो सकता, और न पेड़ में उत्तम फल ही लग सकते हैं। कृषकों की आर्थिक दशा बाग़बानी और तरकारी की खेती से बहुत कुछ सुधर सकती है। पर वे इधर कुछ भी ध्यान नहीं देते!

उत्तम फल और उत्तम तरकारियाँ तभी हो सकती हैं, जब आप अपनी फुलवारी में उचित खाद देंगे। बाग़बानी करते समय बाग़बानी-संबंधी पुस्तकें * मँगाकर बाग़बानी के तरीक़ों को अच्छी तरह सीख लेना चाहिए।

पशु-पालन

हमारे देश में पशु पालने का बड़ा महत्त्व रहा है। गायों

---

* कृषि-संबंधी सभी पुस्तकें आपको निम्न-लिखित पते पर मिलेंगी—

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, अमीनाबाद-पार्क, लखनऊ

का जितना आदर हिंदुस्थान में है, उतना शायद किसी देश में नहीं। गौएँ पालने के कारण ही यहाँ दूध की नदी बहती थी। पुराने समय में एक-एक आदमी नौ-नौ लाख गाय तक पालते थे। दूध के लिये आज की-सी चिल्ल-पों नहीं थी। जो जितना चाहता, दूध पीता और मक्खन खाता था। इसी कारण हिंदुस्थान के लोग दीर्घ-जीवी, पराक्रमी, विद्वान् और शूरवीर होते थे। पर समय के उलट-फेर से हम गायों का तिरस्कार करने लगे। इधर हमारी दशा भी बिगड़ने लगी। सरकार द्वारा भी हमें अभी तक पशु-पालन में कोई प्रोत्साहन न मिला। उल्टे फ़ौज के लिये लाखों गाएँ काटी जाती हैं, और लाखों मन गाय का मांस उजले महाप्रभुओं के उदर में गर्मी लाने के लिये प्रतिवर्ष भारत से भेजा जाता है। पर, हमें विश्वास है, हमारी कांग्रेसी सरकार अवश्य पशु-पालन में हमें प्रोत्साहन देगी, और गौकुशी बंद करेगी।

हमें अच्छी-अच्छी नस्ल की गाय-भैंस * ख़रीदकर रखनी चाहिए, और उनके बच्चों को पालकर तैयार करना चाहिए। बकरी या भेड़ पालने का भी गाँवों में प्रबंध होना चाहिए, और अन्य पशु, जिनसे लाभ हो, पालने चाहिए। जो जाति जिस पशु

---

* प्रत्येक परिवार में इतनी गाय-भैंस पालनी चाहिए कि उस परिवार के प्रत्येक व्यक्ति को कम-से-कम एक छटाँक मक्खन और एक सेर दूध मिल सके।

को पालती हो, उसे उसके पालने में प्रोत्साहन देना चाहिए। भेड़ का ऊन निकालकर उससे कंबल का व्यापार करना बड़ा लाभदायक होता है। बकरियाँ, भैंसें, घोड़े आदि पशु भी अपनी-अपनी शक्ति-भर पालने चाहिए। जहाँ तक संभव हो, पशु-पालन में काफ़ी हाथ बढ़ाना चाहिए। पशु पालने से रुपए मिलते हैं, जिससे खेत की मालगुज़ारी का काम चलता है, और उनके मल-मूत्र फ़सल की उपज बढ़ाते हैं। गाय और भैंस पालने से दूध मिलता है, जिसके सेवन से शारीरिक तथा मानसिक शक्ति का पूर्ण विकास हाता है।

चौथा परिच्छेद

फ़िज़ूलख़र्ची

ग्रामीणों के क़र्ज़ की समस्या हमारे सामने उपस्थित है। बेचारे रात-दिन खेतों में काम करते रहते हैं, फिर भी उनकी हालत सुधरने के बदले दिन-दिन बिगड़ती जा रही है। ग़ौर करने से पता चलता है कि उनके पास कुछ ऐसे फ़िज़ूल ख़र्चे हैं, जिन्हें वे जब तक नहीं छोड़ते, तब तक, कठिन परिश्रम करने पर भी, ग़रीबी से छुटकारा नहीं पा सकते। मैं यहाँ उसी पर प्रकाश डालूँगा।

ग्रामीणों के यहाँ संस्कार-संबंधी ख़र्च में बड़ा अंधेर है। जो ग्रामीण क़र्ज़-रहित हो, उसे यदि एक लड़के या लड़की की शादी करनी पड़े, तो निश्चय ही वह क़र्ज़दार हो जायगा। यही हालत श्राद्ध या अन्य संस्कारों की भी है।

अतः ग्राम-कमेटी द्वारा नियंत्रण रखना चाहिए कि कोई ग्रामीण जनेऊ, विवाह, श्राद्ध, पूजा-पाठ अथवा तीर्थ में एक भी पैसा फ़िज़ूल ख़र्च न करे, और न दहेज ले। देश की वतमान परिस्थिति में एक लड़का अथवा लड़की की शादी में ग्रामीण का १० से २५ रुपए तक ख़र्च करना बहुत है। बरा० साजकर नाच-बाजे से क्या फ़ायदा होता है? जब तक नशा सवार

रहता है, तब तक तो कुछ नहीं मालूम होता, परंतु जब बरात बिदा हो जाती है, तो ख़र्च का चिट्ठा देखकर होश ग़ायब हो जाते हैं। श्राद्ध का ख़र्च भी बहुत है। ग्रामीण लोग श्राद्ध में आँख मूँदकर ख़र्च करते हैं। इस तरह क़र्ज़ का द्वार खोल-कर अपने को दरिद्रता-देवी के हाथ सुपुर्द कर देते हैं। उन्हें अपना ही घर फूँककर तमाशा देखते शर्म नहीं आती। क्या ग़ज़ब की मूर्खता है! मैं मानता हूँ, दान देने या मरे मनुष्य के नाम पर काफ़ी रुपया ख़र्चकर श्राद्ध करने से अवश्य ही उस मनुष्य की आत्मा को शांति मिलती होगी। परंतु क्या मैं सवाल कर सकता हूँ कि क़र्ज़ लेकर श्राद्ध करने से मृत मनुष्य की आत्मा अपने बच्चों को ग़रीबी की चक्की में पिसते देखकर स्वर्ग में तड़पती न होगी?

अतः हे भाइयो! विवाह-शादी, श्राद्ध आदि के ख़र्चे बिलकुल कम कर दीजिए। यज्ञोपवीत-संस्कार में भी ग्रामीणों का काफ़ी रुपया ख़र्च होता है। उसे बिलकुल कम कर देने की आवश्यकता है। एक ब्राह्मण बैठकर दोपहर तक यज्ञ करा देगा, उसमें तूल का क्या प्रयोजन? जनेऊ में एक से लेकर सात रुपए तक ख़र्च करना बहुत है। इससे अधिक खर्च करना देश को ग़रीब बनाना और स्वयं अपने लिये ग़रीबी मोल लेना है। हिंदू या मुसलमान भाई अपने-अपने तीर्थ-स्थानों में पहुँचकर चाइयों को रुपए दे आते हैं। वे पंडे, मुल्ले उन रुपयों का कैसा दुरुपयोग करते हैं, यह भला

किससे छिपा है ? तीर्थ-स्थान इन दिनों उपन्यासों के तिलस्मी-घर हो रहे हैं। काशी, मथुरा, गया, रामेश्वर, मक्का, अजमेर जहाँ भी इच्छा हो, वहाँ के मठाधीशों या मुल्लों पर नज़र दौड़ाइए, आपका हृदय घृणा से काँप उठेगा। फिर जान-बूझकर पाप-पंक में क्यों फँसते हैं ?

फ़िज़ूलख़र्ची का दूसरा अड्डा सरकारी कचहरियाँ हैं। जो मनुष्य ख़ूब संपन्न हो, उसे एक-दो बार मुक़द्दमे में फँस जाने दीजिए, फिर देखिए, दरिद्रता-देवी उसकी प्रेमिका हो जायगी। अतः हे भाइयो ! यदि आप चाहते हों कि आपके गाँव संपन्न हों, तो गाँव का एक मुक़द्दमा भी कचहरी में न जाने दीजिए। ग्राम-कमेटी द्वारा सारे मुक़द्दमों का फ़ैसला करा दीजिए। सरकार द्वारा ग्राम-शासन-कानून पास हो चुका है, जिसके अनुसार गाँव के पंचों को गाँव के छोटे-छोटे मुक़द्दमे फ़ैसला करने का अधिकार तुरंत दे दिया जायगा। यदि उसे गाँवों में तुरंत लागू करना चाहते हैं, तो प्रत्येक हलक़े से सम्मिलित दरख़्वास्त न्याय-मंत्री के पास भेज दीजिए। दरख़्वास्त पहुँचने पर प्रांतीय सरकार उस हलक़े के चुने पंचों को गाँव के छोटे-छोटे मुक़द्दमे करने का अधिकार दे देगी। इसके अनुसार छोटे-छोटे मुक़द्दमे गाँवों द्वारा ही तय हो जायँगे। इससे रुपए और समय, दोनो की बचत होगी।

यदि गाँवों के मुक़द्दमे गाँवों में ही ग्राम-पंचायतों द्वारा तय

रहता है, तब तक तो कुछ नहीं मालूम होता, परंतु जब बरात बिदा हो जाती है, तो ख़र्च का चिट्ठा देखकर होश ग़ायब हो जाते हैं। श्राद्ध का ख़र्च भी बहुत है। ग्रामीण लोग श्राद्ध में आँख मूँदकर ख़र्च करते हैं। इस तरह क़र्ज़ का द्वार खोल-कर अपने को दरिद्रता-देवी के हाथ सुपुर्द कर देते हैं। उन्हें अपना ही घर फूँककर तमाशा देखते शर्म नहीं आती। क्या ग़ज़ब की मूर्खता है ! मैं मानता हूँ, दान देने या मरे मनुष्य के नाम पर काफ़ी रुपया ख़र्चकर श्राद्ध करने से अवश्य ही उस मनुष्य की आत्मा को शांति मिलती होगी। परंतु क्या मैं सवाल कर सकता हूँ कि क़र्ज़ लेकर श्राद्ध करने से मृत मनुष्य की आत्मा अपने बच्चों को ग़रीबी की चक्की में पिसते देखकर स्वर्ग में तड़पती न होगी ?

अतः हे भाइयो ! विवाह-शादी, श्राद्ध आदि के ख़र्चे बिलकुल कम कर दीजिए। यज्ञोपवीत-संस्कार में भी ग्रामीणों का काफ़ी रुपया ख़र्च होता है। उसे बिलकुल कम कर देने की आवश्यकता है। एक ब्राह्मण बैठकर दोपहर तक यज्ञ करा देगा, उसमें तूल का क्या प्रयोजन ? जनेऊ में एक से लेकर सात रुपए तक ख़र्च करना बहुत है। इससे अधिक ख़र्च करना देश को ग़रीब बनाना और स्वयं अपने लिये ग़रीबी मोल लेना है। हिंदू या मुसलमान भाई अपने-अपने तीर्थ-स्थानों में पहुँचकर चाइयों को रुपए दे आते हैं। वे पंडे, मुल्ले उन रुपयों का कैसा दुरुपयोग करते हैं, यह भला

पाँचवाँ परिच्छेद

शासन और व्यवस्था

साल में एक बार इकट्ठा होकर अपने-अपने गाँव का संगठन कर देना चाहिए। गाँव में कुल ५, ७, ९ या ११ पंच होने चाहिए। उनमें से एक सभापति, एक मंत्री तथा एक खज़ांची होना चाहिए। फिर प्रत्येक गाँव की चौकी के लिये ११ स्वयंसेवकों का एक दल तथा उनके ऊपर एक दलपति होना चाहिए।

पंचायत सभा के हाथ में निम्न-लिखित कार्य होने चाहिए—

१— गाँव के सारे झगड़े तय कर देना।

२—गाँव में एक रात्रि-पाठशाला, एक वाचनालय और एक पुस्तकालय स्थापित कर उसे चलाना।

३—गाँव के पहरे का इंतिज़ाम करना और चौकीदारों का काम देखना। यदि चौकीदार बदमाशों पर निगरानी न रक्खे अथवा अपना काम ईमानदारी से न करे, तो उसकी रिपोर्ट मैजिस्ट्रेट या पुलिस-ऑफ़िसर से करना।

४—मुठिया वसूल कराना, तथा मुठिए की आमदनी से पाठशाला, पुस्तकालय, वाचनालय और दवा का प्रबंध करना।

५—अखाड़ा खुलवाना, और उसमें गाँव के नौजवानों को भेजकर उनके कुश्ती लड़ने का इंतिज़ाम करना, तथा लाठी-बनैठी आदि चलाना सिखाना ।

६—नशा-पान-निषेध पर ध्यान देना ।

७—क़र्ज़ में डूबे हुए को क़र्ज़ से छुटकारा दिलाने का उपाय निकालना ।

८—बेरोज़गार के लिये रोज़गार का प्रबंध करना ।

९—एक-दो या अधिक सुयोग्य विद्वान् उपदेशक-रूप में रख, प्रतिसप्ताह आस-पास के गाँववालों को एकत्र करा सामाजिक, राजनीतिक तथा आध्यात्मिक विषयों पर उपदेश दिलाना ।

१०—ग्राम-कला-कौशल की उन्नति के लिये पूरी कोशिश करना ।

११—चर्खा-प्रचार पर ध्यान देना ।

१२—एक ग्राम-को-ऑपरेटिव सोसाइटी क़ायम कर ग्राम-उद्योग-संघ स्थापित करना, और उसके द्वारा ग्राम के उद्योग-धंधे को पुनर्जीवित करना ।

१३—एक ग्राम-को-ऑपरेटिव बैंक खोल कम सूद पर रोज़-गार करने की इच्छा रखनेवालों और कृषकों को रुपए देने का प्रबंध करना ।

१४—एक अनिवार्य शिक्षा-संघ क़ायम कर अपढ़ ग्रामीणों को शिक्षा देने की सारी ज़िम्मेवारी संघ के ज़िम्मे रखना तथा

प्रतिमास उस संघ के कामों का निरीक्षण कर कमी की तरफ़ उसका ध्यान दिलाना।

१५—प्रतिसप्ताह अनिवार्य शिक्षा-संघ का जुलूस निकाल गाँवों या शहरों में फेरी कराना। अशिक्षा की बुराइयाँ तथा शिक्षा के गुण गाँववालों को समझाना।

१६—गाँवों या शहरों में स्त्री-अनिवार्य-शिक्षा-संघ क़ायम कर स्त्री-शिक्षा का प्रचार करना।

१७—एक दवाख़ाना स्थापित कर मौसमी बीमारियों के लिये सस्ती हिंदुस्थानी आयुर्वैदिक और यूनानी दवाइयों तथा असाध्य मरीज़ों को उचित स्थानों में भेजने का प्रबंध करना।

१८—बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, अनमेल-विवाह और तिलक-दहेज़ रोकना।

१९—गाँव के चारो तरफ़ सड़कों और छवरों* का प्रबंध करना। यदि पहले से गाँवों में छवर हों, और वे ग्रामीणों द्वारा खेतों में शामिल कर लिए गए हों, तो पुनः उन्हें दुरुस्त करा देना। यदि पहले से छवर न हों, तो सब-डिवीज़नल ऑफ़िसर को अथवा उन्हें लोकल बोर्ड में दरख़्वास्त दे सड़क या छवर, जिसकी आवश्यकता हो, निकलवाने का प्रबंध करना।

---

* छोटे रास्ते या पगडंडी को छवर कहते हैं।—संपादक

२०—पिछड़ी जातियों के स्वास्थ्य, शिक्षा, उद्योग-धंधों तथा कला-कौशल की उन्नति पर पूर्ण ध्यान देना।

२१—जहाँ के लोग हरिजन भाइयों को कुएँ का पानी न लेने देते हों, वहाँ उनके लिये अलग कुएँ का प्रबंध करना।

२२—भिक्षा-वृत्ति को रोकना। भिक्षा माँगनेवालों के योग्य काम का प्रबंध कर देना।

२३—सबों को अपने-अपने धर्म पर चलने देना। सभी धर्मवालों के साथ 'लक्ष्य एक, पर पंथ अनेक' को ध्यान में रखकर प्रेम-भाव रखना। ईश्वर की सृष्टि-मात्र से—चाहे हिंदू हो अथवा मुसलमान, पारसी हो अथवा क्रिस्तान, सबको परमपिता परमेश्वर की एकमात्र संतान समझ—समानता का व्यवहार करने का उपदेश उपदेशकों द्वारा दिलाना।

२४—देश-विदेश में हो रही नई बातें बताना तथा कौंसिल और एसेंबली में बने क़ानूनों को समय-समय पर समझाना।

२५—पुलिस-ऑफ़िसरों, कचहरी के मुलाज़िमों देशी राज्यों और ताल्लुक़दारों तथा ज़मींदारों के अमलों के ज़ुल्मों से ग्रामीणों को बचाना। रिश्वत लेनेवाले अमलों के संबंध में उचित कार्रवाई करना, जिससे वे घूस-रिश्वत न ले सकें*। पुलिस के अफ़सरों पर काफ़ी निगरानी रखना।

---

* यदि गाँव के लोग घूस-रिश्वत बंद करना चाहें, तो शीघ्राति-शीघ्र घूस-रिश्वत का लेना-देना बंद हो जाय।

छठा परिच्छेद

निर्वाचन-पद्धति

'वोट'-शब्द से नगरों से लेकर गाँवों तक के बच्चे तक अच्छी तरह परिचित हो गए हैं, पर उस अधिकार का उचित उपयोग विरले ही लोग करते नज़र आते हैं।

शासन की एकमात्र कुंजी वोट ही है। वोट की हस्ती से मंत्रिमंडल क़ायम हुआ है। फ़ेडरेशन का संगठन वोट की ही हस्ती पर होगा। स्वायत्त शासन वोट के ही बल पर संचालित हो रहा है। चाहे आप ग़रीब हों या अमीर, पापी हों अथवा धर्मात्मा, मूर्ख हों अथवा बुद्धिमान्, यदि आपके हाथ में वोटर हैं, तो आप ही अपने देश के संचालक, व्यवस्थापिका सभा के सर्वेसर्वा, कॉरपोरेशन के मेयर अथवा डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड के चेयरमैन हैं। यदि आपके हाथ में वोटर नहीं हैं, तो आज की दुनिया में आप लाख बुद्धिमान्, क़ारूँ से भी धनी और विक्रम से भी न्यायी होते हुए भी एक तिनके के बराबर हैं। "Voters are the rulers of their country." अर्थात् वोटर ही अपने देश के शासक हैं। परंतु खेद है, हम देहाती भाई अपना अधिकार नहीं पहचान सके, और न उस अधिकार का उचित उपयोग

करना ही सीख सके ! जो देश स्वतंत्र है, वहाँ बालिग़-मात्र को वोट देने का अधिकार प्राप्त है, पर हमारे ग़ुलाम देश में थोड़े-से व्यक्तियों के सिवा अभी तक यह अधिकार बालिग़-मात्र को प्राप्त नहीं है। सत्याग्रह-आंदोलन से पहले तो कुछ अँगरेज़ी सरकार के दलालों (धनी लोग तथा बड़े-बड़े ज़मींदार) के सिवा सभी भारतीय इस अधिकार से वंचित थे। आम जनता भेड़-बकरियों से भी तुच्छ समझी जाती थी। हमारे देश के नेताओं को यह अपमान बहुत खला। उन्होंने ग़ुलामी को इस अपमान की जड़ समझ पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये सरकार से युद्ध की घोषणा कर दी।

उन्होंने सरकार के साथ पूर्ण असहयोग किया। हमारा देश हमारी भाड़े की सरकार से सन् १९२० से १९३२ तक, महात्माजी की सरदारी में, शांति और अहिंसा की लड़ाई लड़ता रहा। इसी बीच में हमें प्रसन्न करने के लिये सरकार ने कई दफ़ा कितने ही सुधार दिए, जिसमें वोट देने की थोड़ी-थोड़ी सहूलियत बढ़ती गई। पर हम तो पूरी आज़ादी के भूखे थे, अतः सभी सुधार ठुकराते गए, और हमारी लड़ाई जारी रही। सरकार की बेचैनी बढ़ती गई, और अंत में शायद भारत-सरकार की आज्ञा से लॉर्ड इरविन ने, जो आज लॉर्ड हेली फ़ॉक्स के नाम से पर-राष्ट्र-मंत्री हैं, महात्मा गांधी के साथ सुलह कर ली। विलायत में राउंड टेबुल-कान्फ्रेंस'

बुलाई गई। उसमें हमारे देश के एकमात्र कर्णधार महात्माजी भी बुलाए गए। पर आपस की फूट से हम असली नतीजे पर नहीं आ सके—हमें आज़ादी नहीं हासिल हो सकी। ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने हमारे ऊपर ज़बरदस्ती '१९३७ के शासन-सुधार' के नाम से बहुत ज़हरीला क़ानून लाद दिया। हिंदू, मुसलमान, पारसी, सिक्ख, ईसाई, दलित क़ौम आदि कई भागों में हिंदू-राष्ट्र को बाँट, फूट डालकर राज्य करने की चाल चले। उसके अनुसार पहली एप्रिल, १९३७ से प्रांतीय शासन चल रहा है। इसी सुधार के अनुसार वोट देने की कुछ अधिक सहूलियत हमारे देश-वासियों को हासिल हुई है। अभी केवल ३½ करोड़ व्यक्तियों का वोट देने का अधिकार मिला है। पर यदि हमारी लड़ाई जारी रही, तो वह दिन दूर नहीं, जब हम पूर्ण स्वतंत्रता हासिल कर ३७ करोड़ व्यक्तियों में से बालिग़-मात्र को वोट देने का अधिकार दे देंगे। परंतु यह तभी संभव है, जब हिंदू, मुसलमान, ईसाई एक होकर, कांग्रेस का साथ दे ग़ुलामी की ज़ंजीर तोड़ डालेंगे।

हाँ, तो जिस वोट को हमने इतनी कड़ी तपस्या के बाद पाया है, उसे कौड़ियों के मोल नहीं बेचना चाहिए। सच तो यह है कि वोट का अधिकार न तो हमें व्यक्तिगत परिश्रम से मिला है, और न हम अकेले इसके हक़दार ही हैं। पूरे राष्ट्र ने इसके लिये एक साथ कठिन तपस्या की है, तब पाया है। अतः इसे हमें राष्ट्र को देना चाहिए। दूसरे शब्दों में हमारे राष्ट्रपति

जिसे आज्ञा दें, उसे ही हमें इस वोट को देना चाहिए। दूसरे मेरे भाई ही क्यों न हों, यदि वे इसके योग्य नहीं, और हमारे राष्ट्रपति की आज्ञा नहीं, तो कभी हमें उनके हाथों सुपुर्द नहीं करना चाहिए।

हमारे राष्ट्र के कर्णधार, किसी भी चुनाव में, उम्मीद्-वार घोषित करने के पहले वहाँ की जनता से उम्मीदवारों की योग्यता के विषय में परामर्श माँगेंगे। वहाँ हमें बड़ी मुस्तैदी की आवश्यकता है। अनेक धोखेबाज़, मक्कार भी हमारे नेताओं के सामने अपना दानवी माया-जाल फैलाकर यह सिद्ध करने की कोशिश करते हैं कि हम ही अमुक स्थान से प्रतिनिधि होने का हक़ रखते हैं। वहाँ अगर उन्हें मक्कार साबित करने में आप चूक गए, तो वे हमारे नेताओं को धोखा देकर आपके प्रतिनिधि हो जायँगे। इस प्रकार आपका सच्चा, योग्य सेवक आपकी सेवा से वंचित हो जायगा, और आप धोखे के फंदे में बेतरह ५ वर्ष के लिये जा फँसेंगे। बहुधा ऐसा होता पाया गया है। उस समय आप अपने नेताओं को दोष देते हैं। परंतु यह आपकी भूल है। नेताओं के दिव्य दृष्टि तो है नहीं, और न वे विक्रमादित्य के सिंहासन पर बैठे हैं कि ठीक-ठीक न्याय कर देंगे। जब चुनाव का समय आवे, तब गाँव-गाँव की ग्राम-कमेटी द्वारा प्रस्ताव पास करा दीजिए कि अमुक मनुष्य हमारा अगुआ होने की योग्यता रखता है। इस प्रकार जिस उम्मीदवार के संबंध में ग्राम-कमेटियों की राएँ अधिक

होंगी, उस क्षेत्र का प्रतिनिधि चुना जायगा। अतः आपको काफ़ी प्रयत्न करना होगा, जिससे नेतृत्व-रूपी सुधा कहीं असुरों के हाथ न लग जाय, नहीं तो बड़ा ही अनर्थ हो जायगा। आपको याद होगा कि समुद्र मथने पर सुधा निकलते देख असुरों ने सोचा, यदि हम इसे पी जायँ, तो अमर हो जायँगे। बस, फिर क्या था, चट राहु देवतों का वेश बनाकर उनकी जमात में बैठ गया, और सुधा पी गया। इसी तरह जब-जब चुनाव आता है, तब-तब ये स्वार्थी—मानव-रूप में दानव—आपको धोखा दे, नेतृत्व-रूपी सुधा-पान करने की कोशिश करते हैं। उन मौक़ों पर यदि आप उन्हें झाड़ू से अलग न कर सकेंगे, तो निःसंदेह आप अपने को ठगों के हाथ सुपुर्द कर देंगे। अतः आप चुनाव में ख़ूब सावधानी से काम लीजिए, और नेताओं के पास ख़ूब सोच-समझकर योग्य, सच्चे, अनुभवी, न्यायी तथा निःस्वार्थी व्यक्ति के लिये सिफ़ारिश कीजिए। मैं यहाँ, संक्षेप में, इस विषय पर प्रकाश डालूँगा कि कैसे व्यक्ति को अपना अगुआ—प्रतिनिधि—चुनना चाहिए, और कैसे व्यक्ति को कांग्रेसी उम्मीदवार घोषित करने के लिये नेताओं से सिफ़ारिश करनी चाहिए। ऐसे व्यक्ति को अगुआ चुनिए—

१. जो जन-सेवा की परीक्षा में उत्तीर्ण हो चुका हो।

२. जो न्याय के सामने भाई और शत्रु को बराबर समझता हो।

३. जो कम-से-कम इतना पढ़ा-लिखा हो कि जिस जगह

आपका अगुआ बनाया जाता हो, वहाँ के काग़ज़ातों को अच्छी तरह पढ़ सके, अपने मातहतों के काग़ज़ातों का मुलाहिज़ा कर सके, उनकी ग़लतियाँ निकाल सके, तथा उस कमेटी के अन्य स्थानों के अगुआ जब अपने स्थान के लिये माँग पेश करें, तब आपकी तरफ़ से वह भी माँग पेश करे, आपके हक़ों की रक्षा के लिये तर्क-युक्त वकालत कर सके।

इन तीनो बातों के बारे में मेरा वक्तव्य यह है—

फ़र्ज़ कर लीजिए, कोई-कोई सेवा-धर्म से अलग रहनेवाला धनी बोर्ड के चुनाव के समय सोचता है कि चलो, १०-२० हज़ार रुपया ख़र्च कर, कुछ कांग्रेसी सिपाहियों को मिला, वोटरों को पूड़ी-मिठाई खिला, मोटर की सैर करा, अन्य प्रलोभन दे एक बार डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड या कौंसिल का मेंबर हो जाऊँ। काफ़ी इज़्ज़त होगी। डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड के रोड-पेटरौल से लेकर डॉक्टरों और मास्टरों तक पर रोब गाँठूँगा। दूसरे दर्जे में जनता के रुपयों से चलूँगा। बड़े-बड़े हाकिमों से साहब-सलामत का मौक़ा मिलेगा। सभ्य-समाज में एक कुर्सी का हक़दार हो जाऊँगा। अतः वह कोशिश करेगा कि आपका सच्चा सेवक न जाय, और वह धोखा देकर आपके यहाँ से मेंबर हो जाय। उस समय आपका धर्म है कि जी-जान से उस व्यक्ति की सहायता करें या वोट दें, जो आपके देश के लिये मरता है, जो ग़रीबों का हृदय-सम्राट् है, जिसके हृदय में जनता के लिये दर्द है।

महाकवि दुलारेलालजी भार्गव के सुंदर शब्दों में—

राष्ट-प्रेम जाके हिय नहीं ;
जाय जनम जग पाय फिरै सो सूकर-सरिस सदा हीं ।
नेह जनाय मिलै सो तोसों चहै डारि गलबाहीं ,
सामिल कीजै कबौं न वाकौं मीत-मंडली माहीं ।

लाख मित्र होने पर भी देश-प्रेम की सच्ची आग जिसके हृदय में न सुलग रही हो, जो ३७ करोड़ जनता के लिये जीने-मरने को तैयार न हो, उसे भूलकर भी अपना अगुआ न चुनिए। चाहे डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड की मेंबरी हो या कौंसिल की, अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस-कमेटी की सदस्यता हो या ग्राम-कांग्रेस-कमेटी की, याद रखिए, धोखेबाज़, पद-लोलुप तथा देश-द्रोही सार्वजनिक भला नहीं कर सकते। वे चाहेंगे, राष्ट्र का ख़ज़ाना उनके संबंधियों को मिले। वे जनता की थाती स्वयं लूट लेंगे। परंतु देश-प्रेम की आग में तपाया हुआ राष्ट्र-सेवक ऐसा नहीं कर सकता। अतः सच्चे देश-सेवी को ही अपना प्रतिनिधि चुनिए, जिसे संसार का कोई भी वैभव, कोई भी प्रलोभन पद-च्युत न कर सके।

यदि आपने ऐसे व्यक्ति को अपने हल्क़े से डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड का प्रतिनिधि चुन लिया, जो अन्यायी हो, तो, अधिकार पाने पर, वह खुलकर बेईमानी करेगा। अधीनस्थ कर्मचारियों के योग्य होने पर भी व्यक्तिगत द्वेष से उन्हें तबाह कर डालेगा। बात-बात में रिश्वत लेगा। कहाँ तक बतलाऊँ, जहाँ तक

ज़ुल्म और अत्याचार करना संभव होगा, करेगा। उपर्युक्त व्यक्ति को सार्वजनिक हित का कोई कार्य सौंप दिया, तो वह स्वार्थ के वश हो अपने साथ सबको ले डूबेगा। मान लीजिए, यदि आपने किसी स्वार्थी मनुष्य को किसी गोशाले का मैनेजर बना दिया, तो वह सारी अच्छी गाएँ बेंचकर रुपए इकट्ठा कर लेगा, और झूठा काग़ज़ दिखा देगा कि अमुक बीमारी से ये गाएँ मर गईं।

भूकंप के समय सरकार यदि किसी स्वार्थी मनुष्य को गाँवों में मदद देने के लिये अफ़सर नियुक्त किए होती, तो वह क्या करता ? जनता का घर बनवाने के बदले अपना घर सोने का बना लेता। कुएँ बनवाने और पीड़ितों की मदद करने के रुपयों से अपने यहाँ कुएँ खुदवाता या अपने संबंधियों को मदद देता। कंबल और कपड़े पीड़ितों को देने के बदले अपने घर में रख लेता, और ग़रीब, पीड़ित भाई हाथ मलकर रह जाते। याद रखिए, स्वार्थी मनुष्य सभी जगह हैं, क्या सरकार क्या कांग्रेस। अतः ऐसे मनुष्य, चाहे पवित्र-से-पवित्र संस्था में भी क्यों न हों, अपनी आदत से बाज़ नहीं आ सकते। जिस समय ऐसा आदमी किसी भी पद के लिये उम्मीदवार खड़ा हो, उसका खुले शब्दों में पूर्ण विरोध कीजिए। यदि वह किसी पवित्र संस्था में हो, तो वहाँ से उसे अलग करवा उस संस्था की प्रतिष्ठा बचाइए।

प्रतिनिधि होने के लिये यह आवश्यक नहीं कि वह एम्० ए०, बी० ए० हो। पर प्रतिनिधि की पढ़ने-लिखने की इतनी योग्यता अवश्य होनी चाहिए, जिससे वह अपने अधीनस्थ कार्यों का संचालन विना किसी दिक़्क़त के कर सके। बोलने की योग्यता इतनी रखता हो, जिससे राजभाषा में आपके हक़ों की रक्षा अच्छी तरह कर सके *।

यों तो हमारे देश में हमारे प्रतिनिधियों को अँगरेज़ी जानने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती, फिर भी जब तक

---

* वर्तमान समय में अँगरेज़ी हुकूमत होने से कचहरी, डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड, यूनियन-बोर्ड, म्युनिसिपल बोर्ड, स्कूल, अस्पताल आदि के सभी काम अँगरेज़ी में ही होते हैं, जिससे हमारे कितने ही प्रतिनिधि हिंदी-उर्दू के विद्वान् होते हुए भी काग़ज़ातों को नहीं समझ पाते। डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड, म्युनिसिपल बोर्ड, लोकल बोर्ड आदि का एजेंडा तक अँगरेज़ी-भाषा में होता है, जिससे अधिकांश मेंबर, जो अँगरेज़ी नहीं जानते, विना दूसरे की मदद के यह नहीं समझ पाते कि आगामी बैठक में किस विषय पर कार्यवाही होगी। हिंदुस्थान में अँगरेज़ी का महत्त्व देना हम हिंदुस्थानियों का अपमान करना है।

'हँसिया के विवाह में खुर्पी का गीत' किसे अच्छा लगेगा? मुझे यक़ीन है, कोई भी स्वदेशाभिमानी यह बर्दाश्त नहीं कर सकता कि उसके देश की राजभाषा विदेशी हो। हमें इसका पूर्ण विरोध करना चाहिए, और जितना जल्द हो सके, हिंदी को राजभाषा बनाने की कोशिश करनी चाहिए। अँगरेज़ी तो हमारी ग़ुलामी का अंतिम चिह्न है। अतः जैसे हो सके, हमें इसका अंत कर हिंदी को राजभाषा बनाना होगा।—लेखक

राजभाषा अँगरेज़ी है, तब तक हमारे प्रतिनिधि विना अँगरेज़ी-भाषा का ज्ञान रक्खे हमारा प्रतिनिधित्व सफलता-पूर्वक नहीं कर सकते। अतः जब तक राजभाषा भी हिंदी नहीं हो जाती, तब तक अँगरेज़ी की भी बड़ी आवश्यकता है।

आए दिन कितने ही महानुभाव, जिनमें उपर्युक्त तीनो में से एक भी गुण नहीं होता, जो एक-दो बार जेल तो जा चुके हैं, पर और कोई योग्यता उनमें नहीं है, चुनाव का समय आते ही अपनी लाज-शरम को तिलांजलि दे, चुनाव में, उम्मेदवारी के लिये टूट पड़ते हैं। ऐसे व्यक्तियों को कभी अपना प्रतिनिधि नहीं चुनना चाहिए। कितने ही निरक्षर-भट्टाचार्य कांग्रेस-पक्ष मज़बूत देख कांग्रेस में इसलिये हाथ बँटा रहे हैं कि समय आने पर डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड, लोकल बोर्ड, म्युनिसिपल बोर्ड, टाउन-एरिया अथवा म्युनिसिपैलिटी आदि में किसी स्थान पर मेंबर हो जायँगे। यह उनकी भूल है। हृदय में स्वार्थ-भाव रखकर कभी देश-सेवा नहीं करनी चाहिए। यदि उपर्युक्त कार्य-भार-संपादन करने की योग्यता नहीं, तो वहाँ पहुँचकर कुर्सी तोड़ने, ग़प मारने या हाल में सोने के सिवा और क्या कर सकेंगे? काग़ज़ात क्या ख़ाक समझ में आएँगे? बहस का अनुसरण होगा नहीं, मुलाहिज़ा करने की योग्यता रखते नहीं, फिर क्या भत्ता पाने के लिये ही देश-सेवा का बाना धारण किया है? कहने का तात्पर्य यह कि किसी भी पद के लिये इच्छा तब कीजिए, जब उसे पूर्णतया सँभालने की

योग्यता रखते हों। अंधा कभी दूसरों को रास्ता नहीं बता सकता।

परंतु स्वार्थी मनुष्य कर्तव्याकर्तव्य की चिंता नहीं करते। हाँ, आपको तो अपनी भलाई-बुराई देखनी ही होगी। अतः उपर्युक्त कार्य-भार सँभालने की योग्यता जिस व्यक्ति में हो, उसे ही अपना वोट दे प्रतिनिधि चुनना चाहिए, चाहे वह व्यक्तिगत रूप से परम शत्रु ही क्यों न हो।

वोट देने के दिन लोग दूसरे की गाड़ी पर चढ़कर, दूसरे का अन्न खाकर, थोड़े लोभ में आकर अपना ईमान और धर्म बेच देते हैं। ऐसा करना मूर्खता है। अपना खाकर, अपनी सवारी पर जाकर न्याय के नाम पर जिसको हृदय उचित समझे, उसे ही अपना वोट देना चाहिए।

सातवाँ परिच्छेद

गाँवों का स्वास्थ्य

गाँवों की गंदगी मशहूर है। जिधर नज़र दौड़ाइए, उधर ही कूड़ा-करकट, सड़ा-गला दिखाई देता है। इस ओर ध्यान देने की बड़ी आवश्यकता है, क्योंकि गंदगी ही तो बीमारी का घर है।

बरसात के दिनों में कूड़ा-करकट गढ़े में पानी के साथ सड़ जाता है। कूड़ा-करकट सड़ने के कारण पानी दूषित हो जाता है, और उसमें मच्छड़ पैदा हो जाते हैं। ये ही मच्छड़ बीमारी की जड़ हैं। दशहरे से गाँवों में मलेरिया का प्रकोप बढ़ जाता है। इसका एकमात्र कारण गाँवों की गंदगी ही है। हैज़ा, प्लेग, मौसमी मलेरिया, तपेदिक़, इन सब बीमारियों का कारण केवल गंदगी ही है। जिस दिन गाँव साफ़ रहने लगेंगे, उसी दिन बीमारियों की इतिश्री हो जायगी।

मवेशियों से गाँवों का स्वास्थ्य ख़राब हो जाता है। अतः कोशिश होनी चाहिए कि गाँवों में मवेशी न रक्खे जायँ। गाँव के लोग नाँद का बचा हिस्सा दरवाज़े पर रख छोड़ते हैं। वह सड़ जाता और उसमें कीड़े पैदा हो जाते हैं। दरवाज़े का कूड़ा-करकट बुहारकर दरवाज़े पर लगा दिया जाता है। मवेशियों

का मल-मूत्र, घर का झाड़न-बुहारन तथा अन्य सड़े-गले पदार्थ इकट्ठा कर ग्रामीण दरवाज़े पर लगा देते हैं, जिनसे तरह-तरह की बीमारियाँ फैलती हैं। अतः गाँव-कमेटी के पंचों का ध्यान इस तरफ़ जाना चाहिए, और उन्हें कोशिश करनी चाहिए कि किसी तरह की कोई गंदी चीज़, मवेशी का मल-मूत्र, दरवाज़े का कूड़ा-करकट गाँवों में न रहने पावे। दरवाज़े की बुरी चीज़ें या मवेशी का मल-मूत्र दूर खेत में, गढ़े खोदकर, ढककर रखना चाहिए। गढ़े में ढककर रखने से दो फ़ायदे हैं—एक तो वायु दूषित नहीं होती, दूसरे सड़कर उत्तम खाद तैयार हो जाती है। घर की मोरियाँ हमेशा साफ़ रखनी चाहिए। उनमें ब्लीचिंग पाउडर और फ़िनायल छोड़ने से उनके कीड़े मर जायँगे, तथा वायु शुद्ध रहेगी। ब्लीचिंग पाउडर और फ़िनायल ज़िले के हेल्थ-ऑफ़िसर के यहाँ, ग्राम-पंचायत-कमेटी द्वारा दरख़्वास्त देने पर, मुफ़्त मिलेगा। कुएँ में भी कीड़े हो जाया करते हैं। जब कुएँ में कीड़े हो जायँ, तो कुएँ के पानी में ब्लीचिंग पाउडर अथवा लाल दवाई पोटशियम परमैगनेट डालकर कुएँ का पानी निकाल देना चाहिए। संभवतः कुएँ की सफ़ाई साल में दो बार होनी चाहिए—एक मार्च में दूसरे सितंबर में।

गाँव में या नज़दीक मल-मूत्र त्याग करने से भी गाँव का स्वास्थ्य ख़राब हो जाता है, अतः कोशिश रखनी चाहिए कि कोई गाँव में या उसके आस-पास मल-मूत्र त्याग न करे।

हरिजनों की बस्तियाँ तो मानो गंदगी का अड्डा हैं। गंदा रहना मानो उन बेचारों ने अपना स्वभाव बना लिया है। उनकी तरफ़ हमारा ध्यान जाना चाहिए। वे हमारे अंग हैं, अतः यदि हम गाँवों का सुधार चाहते हैं, तो हमारा पहला कर्तव्य है कि उनका सुधार करें। हमें उनकी टोलियों में जाकर उनके घरों की सफ़ाई करानी चाहिए। उन्हें अपने शरीर तथा कपड़ों को स्वच्छ रखने के लिये बाध्य करना चाहिए। उनके घर के आस-पास यदि कूड़ा लगा हो, तो उसे दूर हटवा देना चाहिए। स्वास्थ्य को हानि पहुँचानेवाली अन्य जितनी दूषित वस्तुएँ हों, उन्हें अलग करा देना चाहिए।

सफ़ाई के ही ख़याल से हमारे धर्म-ग्रंथों में होली, दिवाली आदि त्योहारों पर घरों को स्वच्छ करने का उपदेश दिया गया है। वस्तुतः बरसात के दिनों में कूड़ा-करकट सड़कर जहाँ-तहाँ जम जाता है। धूप न होने के कारण घरों में कीड़े पैदा हो जाते हैं। दिवाली के दिन तक वर्षा-ऋतु का अंत हो जाता है। अतः वर्षा-ऋतु का अंत होने पर घरों को गोबर और पीली मिट्टी से लीप देने से वर्षा-ऋतु में पैदा हुए कीड़े मर जाते हैं। धर्म की भावना देकर हमारे ऋषि-मुनियों ने धर्मशास्त्रों में स्वास्थ्य-संबंधी सारी सुंदर-सुंदर बातें बताई हैं, जिनका यदि अनुसरण हो, तो गाँवों में कभी महामारियाँ न पहुँचें। हवन से वायु शुद्ध होती है, अतः गाँवों में हवन होना स्वास्थ्य के लिये अति आवश्यक है।

गाँवों में जहाँ-तहाँ लोग शौच कर देते हैं, जहाँ बैठते हैं, थूक देते हैं । यह बड़ी बुरी आदत है । मल-मूत्र से वायु दूषित होकर अनेकों तरह की बीमारियाँ फैलाती है। अतः मल-मूत्र गाँवों से दूर त्याग करना चाहिए, और त्यागकर मिट्टी से तोप देना चाहिए ।

एक जाति के लोग गाँवों में शूकर पालते थे। वे शूकर घूमकर नित्य मल की सफ़ाई किया करते थे। पर इन दिनों शूकर पालने की प्रथा भी कम होती जा रही है। इससे गाँवों के स्वास्थ्य को बड़ा धक्का पहुँच रहा है। अतः ग्राम-कमेटियों द्वारा शूकर पालनेवाले भाइयों को प्रोत्साहित करना चाहिए। व्यापार के विचार से भी शूकर पालने में काफ़ी नफ़ा है। जो जाति शूकर पालती है, वह यदि अधिक परिमाण में पाले, तो उसे अपने कुटुंब के लिये अन्य किसी रोज़गार की आवश्यकता नहीं। केवल उसी से आनंद के साथ उसकी जीविका चल जायगी।

पाख़ाने के लिये सेपटिक टैंक बनाने से न तो गंदगी का डर रहता है, और न पाख़ाने साफ़ करने के लिये मेहतर की आवश्यकता होती है। इसके बनवाने में केवल २० रुपए का खर्च है। देहात के लिये तो सेपटिक टैंक बड़ा ही सुविधा-जनक है। जो सज्जन अपने इस्तेमाल के लिये सेपटिक टैंक बनवाना चाहें, वे अपने प्रांत के स्वास्थ्य-विभाग के डाइरेक्टर से बनानेवाले मिस्त्री पा सकते हैं।

जहाँ तक संभव हो, गाँवों की सफ़ाई पर पूर्ण ध्यान दीजिए। गाँवों में कुछ ऐसे मूर्ख पुरुष नज़र आते हैं, जो अपनी नासमझी से गाँवों का स्वास्थ्य ख़राब कर देने पर तुल जाते हैं; गाँव के बीचोबीच कूड़ा-करकट रख देते हैं, गोबर का ढेर कर देते हैं, बच्चों का मल-मूत्र दरवाज़े पर लगा देते हैं। ऐसे मनुष्यों को इसकी बुराइयाँ समझाकर यह आदत छुड़ाने की कोशिश करनी चाहिए। और, जो किसी प्रकार मानने पर तैयार न हों, उन्हें ग्राम-कमेटी द्वारा सज़ा होनी चाहिए, अथवा जिस प्रकार हो सके, उन्हें उचित रास्ते पर लाने का प्रबंध करना चाहिए, जिससे गाँव का स्वास्थ्य न ख़राब हो सके।

आठवाँ परिच्छेद

क़र्ज़ की समस्या

भारतवर्ष के ऊपर लादे गए क़र्ज़ों पर ग़ौर कर हृदय घबरा उठता है। ब्रिटिश सरकार इतना क़र्ज़ भारतवर्ष के ऊपर लाद चुकी है कि शायद स्वतंत्र होने पर हमारे राष्ट्र को उसी के भरने में सैकड़ों वर्ष लग जायँगे। यह क़र्ज़ यदि हमारे राष्ट्र की उन्नति के लिये लिया गया होता, तो हमें कोई आपत्ति न थी। पर इसका अधिकांश ब्रिटेन की उन्नति के लिये लिया गया है, जैसे योरपीय महायुद्ध के समय का सारा ख़र्च भारत के ऊपर लादा गया है। ईसाई-धर्म-प्रचार में जो ख़र्च होता है, सब हमारे राष्ट्र के ख़र्च में शामिल होता है। भारत की आमदनी का आधा हिस्सा (७० करोड़) केवल फ़ौज में, ब्रिटेन को सुरक्षित रखने के लिये, ख़र्च किया जाता है। पर सारा ख़र्च भारत के ऊपर लादा जाता है। भला, संसार में कौन ऐसा राष्ट होगा, जो अपनी आमदनी का आधा हिस्सा फ़ौज में ख़र्च कर देता हो? हमारे वाइसराय महोदय की तनख़्वाह ८००) रोज़ है! हमारी आमदनी का एक बहुत बड़ा हिस्सा सिविलियनों, फ़ौज के अफ़सरों तथा अन्य बड़े पदाधिकारियों को पेंशन देने में प्रतिवर्ष विलायत भेज दिया जाता है। ऐसी

परिस्थिति में यदि भारतवर्ष दिवालिया हो जाय, तो आश्चर्य ही क्या है ? यह तो है हमारे राष्ट्र की दशा। अब गाँव में रहनेवाले किसानों और मज़दूरों पर जो क़र्ज़ है, उस पर थोड़ा-सा ध्यान दें।

नीचे दिए आँकड़ों से भिन्न-भिन्न प्रांतों के ऊपर लदे क़र्ज़ के बोझ का अंदाज़ा लगेगा, जो १६३० की किसान-क़र्ज़-जाँच-कमेटी की रिपोर्ट में प्रकाशित हुआ था—

प्रांत	जन-संख्या	क़र्ज़
बंगाल	५०१ लाख	१०० करोड़
युक्तप्रांत	४८४ ,,	१२४ ,,
मद्रास	४६५ ,,	१०५ ,,
बिहार-उड़ीसा	३७६ ,,	१५५ ,,
पंजाब	२३५ ,,	८१ ,,
मध्यप्रांत	११५ ,,	३६ ,,
बंबई (सिंध-सहित)		८१ ,,
आसाम		२२ ,,
केंद्रीय इलाक़े		१८ ,,
कुर्ग		३६ ,,
वर्मा		५१ ,,

ब्रिटिश भारत के ग्रामीण भाइयों पर कुल ६०० करोड़ क़र्ज़ है।

इससे पता चलता है कि बंगाल में प्रत्येक व्यक्ति पर

औसतन् २०), मद्रास में २५), बिहार में ४१), पंजाब में ३४) तथा मध्यप्रांत में ३१) क़र्ज़ है। इस प्रकार ग्रामीण भाइयों के ऊपर औसत क़र्ज़ ३५। होता है, और औसत आमदनी ४२) ही। यदि क़र्ज़ का सारा बोझ हटा दें, तो बेचारे ७) में कैसे मालगुज़ारी दें, कैसे कृषि-संबंधी चीज़ें खरीदें, और कैसे जीवन की आवश्यक वस्तुएँ क्रय करें? नतीजा यह होता है कि वे क़र्ज़ा पटा नहीं पाते। कहीं-कहीं तो क़र्ज़ और आमदनी बराबर पहुँच जाती है!

ऐसी हालत में यदि क़र्ज़ का उचित उपाय सरकार द्वारा न हुआ, तो क़र्ज़ में डूबे हुए भाई, जो नब्बे फ़ीसदी हैं, विना मौत मर जायँगे। क़र्ज़ देनेवाले साहूकार कुछ बहुत ही नाजायज़ कार्रवाइयाँ करते हुए नज़र आते हैं, जिन्हें रोकने का प्रांतीय सरकार द्वारा प्रबंध होना चाहिए। उन नाजायज़ कार्रवाइयों में से कुछ मैं नीचे दे रहा हूँ—

१—थोड़े-से रुपए देकर निरक्षर भाइयों से सादे कागज़ पर अँगूठे का निशान ले लेना तथा समय पर उन पर मनमाने रुपए का दावा कर सारी जायदाद नीलाम करा लेना।

२—सादे कागज़ पर अँगूठे का निशान लेकर रख लेना, और क़र्ज़ अदा करते समय दूसरा निशान दिखाकर काट देना। कुछ दिन बाद पहला निशान अपने संबंधियों तथा मित्रों को देकर उसकी सारी जायदाद नीलाम करा लेना।

३—क़र्ज़ देने के पहले ही ४ रुपए से लेकर १५ रुपए

सैकड़ा तक सलामी काट लेना, और दो रुपए सैकड़ा तक सूद वसूल करना।

४—१ रुपया सैकड़ा तहरीर और ।) तक टिकट वसूल करना।

५—१ रुपया सैकड़ा घोड़ही, हथिही, ब्याही आदि वसूल करना।

६—अपना बहीखाता ऐसी चालबाज़ियों से लिखना कि जब जितने चाहें, क़र्ज़दार के ऊपर रुपए दिखा दिए जायँ।

मेरी आँखों के सामने एक ऐसी घटना घटी थी कि साहूकार ने एक आदमी से ४०० रुपए की चिट्ठी लिखा ली, पर रुपया नहीं दिया। बेचारे ग़रीब ने अदालत की शरण ली, पर वहाँ से भी उसे हारकर लौटना पड़ा।

साहूकारों के इन ज़ुल्मों से ग्रामीणों को बचाने के लिये तब तक कोई उपाय नहीं, जब तक सरकार ग्राम-बैंक खोलकर क़र्ज़ देने का प्रबंध स्वयं नहीं करती। ग्रामीणों को इस दुःख से बचाने के लिये सरकार द्वारा निम्न-लिखित कार्रवाइयाँ फ़ौरन् होनी चाहिए, अन्यथा वे बरबाद हो जायँगे—

१—क़र्ज़दारों ने जितना क़र्ज़ दिया है, उसके दूने से अधिक की डिग्री अदालत न दे।

२—क़र्ज़ में डूबे हुए भाई यदि चाहें, तो अदालत उनके क़र्ज़ की उचित क़िस्त कर दे।

३—प्रांतीय सरकार भारत-सरकार से क़र्ज़ लेकर, प्रत्येक थाने में सरकारी बैंक खोलकर क़र्ज़दारों को क़र्ज़ दे, तथा ग्राम-उद्योग-धंधे खोलकर, क़र्ज़ में डूबे हुए व्यक्तियों से काम लेकर उनका क़र्ज़ पटाने का प्रबंध करे।

४—जो क़र्ज़ में डूबे ग्रामीण या रोज़गारी सरकार से उद्योगशाला खोलने या बाहर के देशों से उद्योग-धंधे सीखने के लिये क़र्ज़ माँगें, उन्हें क़र्ज़ देने का प्रबंध करे।

५—सुरक्षित क़र्ज़ ।) सैकड़े और असुरक्षित ।।) सैकड़े से अधिक न लिया जाय, न अदालत डिग्री ही दे।

रोगी को जब तक भीतर दवा नहीं पिलाई जाती, तब तक मरहम-पट्टी से कुछ असर नहीं पहुँचता, उसी प्रकार ग्रामीणों का जीबन सुखमय बनाने के लिये लाखों प्रयत्न भले ही हों, पर जब तक उनके क़र्ज़ का प्रश्न हल नहीं हो जाता, तब तक उनका जीवन कभी सुखमय नहीं हो सकता।

नवाँ परिच्छेद

मादक द्रव्य

जहाँ हमारी शिक्षा-पद्धति का दृष्टिकोण बदलकर हमें निकम्मा बना डाला गया है, हमारे उद्योग-धंधे नष्ट कर हमें दरिद्र बना दिया गया है, वहाँ मादक द्रव्य-सेवन में प्रोत्साहन दे हमारा नैतिक पतन करने में भी कोई कोर-कसर नहीं रक्खी गई है। इस क्रूर पिशाच ने तो भारत का सर्वनाश करके ही छोड़ा है।

एक मज़दूर, जो चार आना रोज़ पाता है, ज्यों ही अपनी मज़दूरी पा लेगा, भट्ठी की ओर दौड़ेगा, और जब तक अपनी सारी कमाई भट्ठी-देवी के हवाले न कर देगा, घर न लौटेगा। इस तरह अपनी दिन-भर की गाढ़ी कमाई भट्ठी के हवाले कर मज़दूर ख़ाली हाथ घर पहुँचते हैं। इधर स्त्री और बच्चों को भूख की ज्वाला में जलते हुए देख तनिक भी तरस नहीं आता, उलटे नशे की झोंक में स्त्री और बच्चों की ख़बर लेते हैं। यदि मज़दूरी बंद हो जाती है, तो स्त्री के गहने, कपड़े-लत्ते बेचकर शराब पीना आरंभ कर देते हैं। यदि घरवालों ने कुछ भी आना-कानी की, तो डंडों से ख़बर लेना शुरू कर देते हैं। इस प्रकार अपना

सर्वस्व बेचकर दर-दर भीख माँगते फिरते हैं। शराब पीने की आदत यदि किसी धनी-से-धनी व्यक्ति को भी लग गई, तो चंद ही वर्षों में उसका सर्वनाश समझिए। शराब के पीछे हज़ारों धनियों को भिखारी बनते हुए आपने देखा होगा। जो हालत शराब-ताड़ी पीनेवालों की होती है, वही गाँजा और अफ़ीम के ग़ुलाम होनेवालों की होती है। नशा एक-सा असर करता है, चाहे वह अफ़ीम हो या भाँग, गाँजा हो या शराब-ताड़ी। जो व्यक्ति इनमें से किसी का इस्तेमाल आरंभ करते हैं, उनकी सारी बुद्धि नष्ट हो जाती है, भला-बुरा, कर्म-कुकर्म, धर्म-अधर्म समझने की शक्ति जाती रहती है। फेफड़े सड़ जाते हैं, सैकड़ों बीमारियाँ शरीर में घर कर लेती हैं। ज्यों-ज्यों इनका सेवन करते जाते हैं, त्यों-त्यों सेवन करने की इच्छा बढ़ती जाती है। जिनके पास कल राज्य था, वे आज इसी पिशाचिनी के फेर में पड़कर भिखमंगे बन गए हैं, किसी वेश्या का जूठा चाट रहे हैं, या अपना जीवन बोझ समझ इस संसार से सदा के लिये छुट्टी ले रहे हैं।

भारतवर्ष में पुराने ज़माने में भी मादक द्रव्य का व्यवहार करना पाप समझा जाता था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, सभी भूलकर भी इसका इस्तेमाल नहीं करते थे। जब तक उन लोगों ने इस नियम का पालन किया, तब तक ज्ञानी, विद्वान् और सुखी बने रहे, परंतु जब से अपने ऊपर से यह पाबंदी हटा ली, तब से सब तरह से नीचे चले गए।

एक रामायण में एक स्थान पर इस प्रसंग की एक बड़ी शिक्षा-प्रद कथा आती है। कथा का रूप इस प्रकार है—

श्रीमर्यादा-पुरुषोत्तम रामचंद्रजी के राज्य में एक शूद्र तपस्या कर रहा था। दैव-योग से जिस वर्ष से वह तपस्या कर रहा था, उसी वर्ष से वर्षा बंद हो गई। महर्षियों ने इसका कारण सोचा, पर उन्हें उस अवर्षण का कोई उचित कारण नज़र नहीं आया। वे बहुत दिन तक इसी चिंता में पड़े रहे। एक दिन उन ब्राह्मणों में से किसी ने कहा—भाई, जिस साल से यह शूद्र तपस्या कर रहा है, उसी वर्ष से यह अवर्षण हुआ। इसकी सत्यता की जाँच के लिये वे ब्राह्मणदेव उस तपस्वी शूद्र के पास पहुँचे। उन लोगों ने उससे पूछा—भाई, कब से तपस्या करते हो? उसने ठीक-ठीक बता दिया। ब्राह्मणों को विश्वास हो गया कि इस अवर्षण का कारण एकमात्र इस शूद्र की तपस्या है, अतः उन्होंने पुरुषोत्तम राजा रामचंद्रजो के पास पहुँच सारी कथा कह सुनाई, और कहा कि हे राजन्! आप उस शूद्र तपस्वी को मारकर पृथ्वी का बोझ हलका कीजिए। जब तक वह शूद्र तपस्या करता रहेगा, तब तक मेघदेव जल नहीं दे सकते। अकाल के मारे राजा रामचंद्रजी की प्रजा मर रही थी। एक आदर्श राजा होने के कारण इसका उन्हें बहुत दुःख था। वह प्रजा का कष्ट दूर करने के लिये कुछ भी करने के लिये सहर्ष तैयार थे। ब्राह्मणों की बातें मानकर वह उस जंगल में धनुष-बाण लेकर

पहुँचे, जहाँ वह शूद्र तपस्या कर रहा था, और उसे मार डाला। मारने के बाद उसकी कुटी में उन लोगों ने कुछ गाँजा और गाँजा पीने की चिलम पाई। यथार्थ में वह तपस्वी शूद्र नहीं, ब्राह्मण था, परंतु गाँजे का ख़ूब दम लगाया करता था, अतः ब्राह्मणों ने उसे अपनी जाति से अलग कर दिया था, और उसे शूद्र समझते थे। अवर्षण का कारण यही बताया जाता है कि वह तपस्वी गाँजा पीकर वायु-मंडल को दूषित बना देता था, इसी से पानी नहीं बरसता था।

आज जहाँ लाखों लोग नित्य गाँजा-भाँग, बीड़ी-सिगरेट् पीकर वायु-मंडल दूषित बना रहे हैं, वहाँ अगर अकाल पड़े, या अवर्षण हो, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। मैं सच कहता हूँ, जिस दिन से गाँजा-भाँग पीना बंद हो जायगा, शराबी शराब पीना बंद कर देंगे, अफ़ीमची अफ़ीम खाना छोड़ देंगे, सिगरेट्, चुरुट, बीड़ी, तंबाकू, सबका पूर्ण बहिष्कार हो जायगा; भारतवर्ष का वायु-मंडल ठीक हो जायगा, और उचित समय पर उचित वर्षा होने लगेगी। ओले, पाले आदि का नामो-निशान मिट जायगा, और यह भारत-भूमि पुनः अन्न से परिपूर्ण हो जायगी।

नशीली वस्तुओं के व्यवहार से जन-साधारण के स्वास्थ्य पर भी कम असर नहीं पड़ता। वायु-मंडल दूषित हो जाने के कारण तरह-तरह की बीमारियाँ फैलती हैं, और इस तरह सैकड़ों ग्रामीण असमय में ही, काल के गाल में चले जाते हैं।

आर्थिक विचार से भी नशीली वस्तुओं के व्यवहार से देश को बहुत हानि पहुँच रही है। भारतवर्ष में ५५ लाख मठ हैं। यदि प्रत्येक मठ में कम-से-कम एक रुपए का गाँजा नित्य ख़र्च होता हो (इससे अधिक ख़र्च होता है, कम नहीं), तो भी प्रतिदिन ५५ लाख रुपए केवल दूसरों की कमाई पर ज़िंदगी बसर करनेवाले साधू फूँक डालते हैं ! इस हिसाब से वर्ष-भर में लगभग दो अरब रुपए का गाँजा जिस देश में अहदी लोग—साधू के भेष में देश के कलंक—फूँक डालते हैं, भला उस देश की क्या हालत होगी ? इसके बाद सर्व-साधारण के गाँजे का हिसाब है। सिगरेट, बीड़ी, अफ़ीम, चुरुट, शराब, ताड़ी और तंबाकू अलग हैं।

मादक द्रव्य-सेवन से मानव-समाज का नैतिक पतन भी बड़ा भयंकर होता है। जो मनुष्य गाँजा-अफ़ीम या शराब-ताड़ी का इस्तेमाल करते हैं, उनकी बुद्धि नष्ट हो जाती है, जैसा मैं ऊपर लिख चुका हूँ। कितने ही लोग शराब के नशे में ख़ून तक करते पाए गए हैं।

इस प्रकार मादक द्रव्य हमारा शारीरिक, मानसिक और आर्थिक पतन करके तब चैन लेता है। मानव-समाज का इससे घोर शत्रु दूसरा खोजने पर भी आप नहीं पा सकते। यही कारण है कि भारत के ऋषि-मुनि इसके निषेध की पूर्ण व्यवस्था किए हुए थे।

इस्लाम-धर्म में भी नशीली वस्तुओं का निषेध है। पर इन

दिनों धर्म के असली तत्त्व को न तो हिंदू देखते हैं, और न मुसलमान। बस, आपस में लड़ना ही अपना परम धर्म समझते हैं।

हमारे देश की सबसे बड़ी पंचायत कांग्रेस को मादक द्रव्य सदैव खटकता रहा। अतः उसने कराँची के घोषणा-पत्र में एक प्रस्ताव इस आशय का भी पास किया कि कांग्रेस नशीली वस्तुओं का व्यवहार रोकने का पूर्ण उद्योग करेगी।

अपने घोषणा-पत्र के अनुसार जब कांग्रेस ने प्रांतीय शासन की बाग डोर अपने हाथ में ली, तो शराबबंदी का आंदोलन आरंभ कर सर्वप्रथम बिहार तथा यू० पी० के क्रमशः सारन तथा एटा-मैनपुरी-ज़िले में शराब, ताड़ी और गाँजे की बिक्री का लाइसेंस रोक दिया। यू० पी० के आबकारी-विभाग के मंत्री माननीय डॉक्टर कैलासनाथजी काटजू और बिहार के आबकारी-विभाग के मंत्री माननीय श्रीयुत जगलालजी चौधरी शराबबंदी-आंदोलन को सफल बनाने में खूब व्यस्त हैं, पर उनका तथा अन्य कांग्रेसी महोदयों का आंदोलन तभी सफल हो सकता है, जब जनता उनको सहयोग दे।

जनता यदि समझती है कि मादक द्रव्य सचमुच हमारे प्राण, धन तथा ज्ञान का घोर शत्रु है, तो शीघ्रातिशीघ्र उसे इसे रोकने पर तुल जाना चाहिए।

इस संबंध में ये उपाय काम में लाए जा सकते हैं—

(१) ग्राम-पंचायत द्वारा महीने में एक बार डुग्गी पिटवाई जाय कि मादक द्रव्य मनुष्य के जीवन के लिये बड़ी घातक वस्तु है, इसका सेवन कोई न करे।

(२) जो इसे इस्तेमाल करता हुआ पाया जाय, उसके पास ग्राम-कमेटी के पंच तथा ग्राम के अन्य बूढ़े जायँ, और उसकी बुराइयाँ समझाते हुए उसे छोड़ देने की शपथ लें। फिर भी यदि वह न माने, तो गाँववाले ही सामाजिक दंड दें, और बार-बार उसकी बुराइयाँ समझाते रहें।

(३) सरकार मैजिक लैंटर्न और सिनेमा द्वारा नशीली वस्तुओं के व्यवहार की बुराइयाँ बतलाए।

(४) मादक द्रव्य-सेवन की बुराइयों से संबंध रखनेवाले नाटक गाँवों में खेले जायँ। हिंदी के सर्वश्रेष्ठ नाटककार पं० गोविंदवल्लभ पंत ने 'अंगूर की बेटी'-नामक एक सुंदर नाटक लिखा है। उसमें शराब की बुराई का अच्छा चित्रण किया है। इस नाटक को गाँव-गाँव में खिलवाने और पढ़वाने से मादक द्रव्यों के प्रति जनता में घृणा पैदा होगी।

(५) प्रतिसप्ताह मादक द्रव्य-विरोध-समिति की एक सभा की जाय, और जुलूस निकालकर कांग्रेस-कमेटी द्वारा गाँव-गाँव निम्न-लिखित नारे लगाए जायँ—

गाँजा पीना छोड़ दो। अफ़ीम खाना छोड़ दो। भाँग पीना छोड़ दो। शराब पीना छोड़ दो। तंबाकू

खाना छोड़ दो। बीड़ी-सिगरेट् छोड़ दो। ताड़ी पीना छोड़ दो। नशा भीख मँगाता है। नशा बुद्धि हर लेता है। नशा मनुष्य को पशु बना देता है।

इतना करने पर भी जो मनुष्य न सुधरे, उससे देहाती भाई किसी तरह का सहयोग न करें। न उससे बोलें, न किसी प्रकार की उसे मदद दें। इतना होने पर वह आप-ही-आप मान जायगा, और इस तरह वर्तमान नारकीय ग्राम्य जीवन सब प्रकार स्वर्गीय हो जायगा।